

पतिक्रते

सती, सुनीति, गान्धारी, सावित्री, दमयन्ती चौर शकुन्तला के पातिव्रतपूर्ण पवित्र जीवनचरितों का संग्रह

> श्रायागेन्द्रनाथवैधु-लिखित बेंगला पुराके का हिन्दी-अनुवाद

> > ग्रनुवादक

श्रीजनार्दन भा

_{प्रकाशक} इंडियन प्रेस, प्रयाग

१९१७

सर्वाधिकार रचित

Printed and published by Apprea Krishna Bose, at the Indian Press. Allahabad.

पतित्रता

पहला ऋारूणन

सती

विद्वार में जिस जगह गङ्गा हिमालय से प्रकट हो पृथ्वी पर आई हैं, उसके सामने की मूमि को कनसल प्रदेश कहते हैं। इस प्रजापति

र्केट पराक्रमी राजा उस समय दूसरा न था। इतनी श्रवुत सम्पत्ति के स्तामी होकर भी वे वड़े तपस्त्री थे।

वहे प्रतापी थे। उनके जैसा ऐश्वर्यशाली श्रीर

उन्होंने कितने यज्ञ श्रीर कितने दान किये थे। कितने अच्छे अच्छे जेते का अनुष्ठान किया था, उनकी संख्या नहीं। इस कारण सब

हों। कहा करते घे कि—"धर्म और कर्म में राजा दत्त की बरा-वरीकरने वाला कोई नहीं है।"

त्र की राजधानी कनखल शोभा में इन्द्र की अमरावती को भी जे हुए थी। कई हज़ार वर्ष वीतने पर अब भी कनखल की प्राकृषिशोभा में कुछ अन्तर नहीं पढ़ा है। इसके समीप ही वितर्पिहमालय के असंख्य ज्वाति-च्य, वर्ण से टॅंके शिखर निश्चल मेघमाला की भाँवि खड़ें हैं। इस प्रदेश के भीवर से होकर गङ्गा का प्रवाह साँप की भाँति कुटिलं गित से घूमता फिरता वहें तीव्र वेग से नीचे की ब्रोर वह रहा है। कनखल में गङ्गा की क्या ही विलक्षण शोभा हैं, जिसका वर्णन नहीं हो सकता। गङ्गा का जल इतना खच्छ कि उसके तलस्थित छोटी छोटी मछलियाँ तक दें भ पड़ती हैं। कहीं पारे सा सफ़ेंद्र, कहीं भाकाश सा नीला जल देखते ही मन में शान्ति छा जाती है धीर ताप का नाश होता है। वहें वहे महासा, ऋपि, मुनिगण क्यों गङ्गा की महिमा से इतने सुम्थ थे, जो लोग यह जानना चाहते हैं। वे एक बार इरिद्वार ब्रौर कमखल प्रदेश की गङ्गा का दर्शन करें।

गङ्गा का स्रोत जो कनखल के एक तरफ से होकर वह रहा है, उसका नाम नीलधारा है। महाराज दच का मियमण्डित राज-भवन इसी नीलधारा के किनारे शोभायमान था। वरसात के मैसिस में नदी का प्रवाह प्रासाद के यद को पखारता हुआ वह रहा था और प्रासाद के उपर रहने वाले उसकी श्रविरत कलकल ध्वनि को सुनते सुनते सुलपूर्वक सो जाते थे।

राजा दच के बहुतेरी कन्यायें थां। सरोवर जैसे फूले हुए कमलों से और त्राकाशमण्डल जैसे चमकदार तारागयों से स्पो-मित होता है, राजा दच का घर भी वैसे ही राजकुमाणिं से शोमायमान हो रहा था। कन्याओं की मोहिनी मूर्ति हैं कर राजा और राजी के हृदय श्रामन्द से पुलकित होते थे।

राजकुमारियाँ प्रति दिन नीलधारा में स्नान करते ^{वीँ} श्रीर गङ्गा के निर्मल जल में मलीमांति नहाती थीँ । कसी ग^{के कि}नारे

पड़ती थीं। इस प्रकार जलकीड़ा करके उजले, पीले, नीले श्रीर लाल रङ्ग को पत्थर को छोटे छोटे दुकड़ों को बटोर कर घर ले जाती थीं । यह देख कर राजा रानी दोनों हँसते श्रीर बेटियों से कहते थे:---

की बाल पर इधर उधर दीड़तीं और कभी जल के भीतर घस

''हमारे घर में ढेर के ढेर मिशा मोती पडे हैं द्वम लोग इन पत्यरीं को लेकर क्या करोगी ?"

राजकुमारियाँ कुछ न बोलती, हुँस कर चुप हो रहती थीं।

वे हीरे मोतियों को फेंक कर उन्हीं पत्थरों से अपने खेलने के घर को सजाती थीं। राजकुमारियों की बाल्यावस्था वीत चली, क्रमशः वे सब बढ़ी हुई । यह देख दत्त प्रजापित ने बढ़ी धूम-

धाम के साथ उन सब कन्याओं का ज्याह कर दिया। एक से एक सुन्दर और गुगावान जामाता पाकर राजा और रानी के भ्रानन्द

की सीमा न रही। विवाह होने के पीछे एक एक कर सभी राजकन्याये ससुराल जाकर सुखपूर्वक रहने लगीं। दत्त की केवल एक कन्या कुमारी बच रही, जिसका नाम

सती था। सती सबसे छोटी होने के कारण माँ बाप की बड़ी हुलारी थी। उस पर मा बाप बहुत स्तेह रखते थे। 🕖 राजा रानी ने सन में सोचा था, "सती जब बड़ी होगी, तब ्र क्वं कन्यात्रों की अपेचा विशेष समारोह के साथ सुन्दर सुवोग्य

से उसे व्याह देंगे।" सती के रूप-गुण की वर्णनाकर्दातक की जाय? यद्यपि

में कन्यायें सभी अनुपम सुन्दरी थीं, किन्तु सती के साथ किसी

के रूप की तुलना न वी। वह सभी में परम सुन्दरी थी। खी का रूप उसके शरीर की कान्ति या उसके प्रांस, कान, नाक प्रांदे के गठन में न था। सवी का रूप था उसके पवित्रमान में, उसकी दिन्य ज्योति में। को कोई उसे देखता, उसकी टकटकी वैंघ जाती थी। उसे यद्दी जान पड़ता था कि साचात् देवी उसके सामने खड़े. > हैं। साधु संन्यासी कुमारिका सवी को देख कर जगहस्या के रूप का ज्याम करते थे शीर मंजिमान से उसे प्रणाम करते थे।

सती का स्वभाव भी श्रन्य राजकुमारियों से विलचण या। धीर राजञ्जमारियां, भूपण, वसन श्रीर रुङ्गार के पीछे दिन रात व्यत्र रहती थीं, किन्तु सती का ध्यान इन उपभोग्य वस्तुंत्रीं की श्रीर न था। राजकन्याओं में कोई संतरंगा कपड़ा कोई कमलपत्ती रङ्ग का कोई नील रङ्ग का वस्त्र पहनना, पसन्द करती थीं, किन्तु सती गेरुवा रङ्ग का कपड़ा बहुत चाह से पहनती थी । श्रीर राजकन्याश्री के कण्ठ में सोहती थी मोती की माला धीर हाथ में सोहता था र्द्वारकजटित सोने का कड़ना । किन्तु सती के कण्ठ में स्फटिक की माला, भ्रीर हाथ में रुद्राच का वलय सुशोभित या। भ्रीर राज-कुमारियाँ देह में लगाती थीं चन्दन, कस्तूरी, केसर प्रादि सुगन्धित द्रव्य, किन्तु सती के जलाट भीर वाहों में शोभा पाता या पिता . के यज्ञ-कुण्ड का भस्म । ध्रीर राजकन्याये दासियों के द्वारा वहे यल से चोटी गुँधवाती थीं। फिन्तु सती के लम्बे लम्बे केश विना यल के धरती पर लोटते थे। कभी वह सिर में तेल न देती थी। जब तब रूखे स्नान के अनन्तर वालों को समेट कर जटा की भाँति

वाँघ लेती थी। रानी सती का यह भाव देख कर बहुत दुखी होती

थो। अविवाहित किशोरी की वेष-मूर्ण के सम्बन्ध में ऐसी उदा-सीनता देख कर कैन माता होगी जो धैर्य रख सकेगी ? इसलिए वह कभी कभी भिक्षक कर सती से कहती थी:—

बेटी, तुम श्रव धीरे धीरे स्थानी होती जा रही हो, िकन्तु तुम्हारी यह कैसी समभ है ? न तुम कभी अच्छा कपड़ा पहनती हो, न कोई अच्छा गहना । कहां तक कहूँ, तुम सिर के बाल तक नहीं बांधती। इस तरह रहने से लोग तुम्हें पगली कहूँगे। कोई तुम से व्याह करना न चाहोगा।

राजा दत्त भी सती का भाव देख कर ज़ुब्ध रहते थे। किन्तु बह सरलता की मूर्ति, समता की पात्री, ध्रीर ख्रांख की पुतली थी, इसी से वे उससे ज़ुळ न कहते थे। विशेष कर सती में यह एक दोष था कि वह वड़ी कीमलहदया थी, थोड़े ही में उसके कमल से नयनों में ख्रांदू भर खाते थे। इस कारण वे सती को लच्य करके रानी से कहते थे— ''मेरी वेटी पगली है, दैव न करें कि यह किसी पागल के हाथ पड़े।''

जब सती व्याहने योग्य हुई तब दच्च ने योग्य वर हूँ टूने की इच्छा से अपने भाई नारद मुनि को जुलाकर कहा— "आप सर्वत्र जाते हैं, क्या राजा क्या रह्क, क्या गृही, क्या संन्यासी कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जिसके साथ आप का परिचय न हो। मेरी सती के लिए आप एक अच्छा वर हूँ द कर ला दें तो मैं विशेष जपकृत होऊँ।"

"जो ग्राज्ञा" कहकर नारहजी बाहर निकले। ग्रनेक स्थानें में ग्रूमते फिरते कनखल लीट कर उन्होंने राजा दत्त ग्रीर उनकी रानी से कहा—''मैं आपको सती के लिए एक अखन्त योग्य कर ठीक कर आया हूँ। सती के योग्य वैसा और कोई वर मेरी हिट में नहीं आता।'

दत्त ने वड़ी श्रातुरता से पृद्धा—"कैसा वर । वे कीन हैं ?" सारद ने कहा—"वे कैलासपुरी के राजा हैं।"

सुनकर दच की भी ज़रा उपर की वन गई। उनके कुछ पूज़ने के पूर्व ही रानी ने कहा—"कैजासपुरी ? वह तो यहां बहुत दूर है। वहां जाने का मार्ग भी तो सुगम नहीं है। वहां सती का व्याह होने से में उसे बरावर न देख सकूँगी। देखने की कैंग वात उसका कुशुल-समाचार तक जल्दी न मिलेगा।"

नारद—''श्रापको किस वात की कमी है जो इच्छा करने पर दूरश होने के कारण श्राप सती का संवाद न ले सकेंगी? श्राप सती को बरावर देखती रहें यह अच्छा वा उसे योग्य वर के हाध देकर श्राप निश्चिन्त हो रहें—यह श्रच्छा? यदि आपकी सती योग्य वर पाकर सुखपूर्वक रहे तो ध्राप उसे हमेशा न देखें, इसमें क्या हानि?"

राजा धीर रानी ने कुछ देर इस वात की मन में सीच कर निश्चय किया कि नारद जी ठीक कहते हैं।

दच ने पूछा—"वर पहे लिखे हैं ? उनकी बुद्धि कैसी है ?" नारद—"दुद्धि-विद्या में उनकी वरावरी करने वाला कोई नहीं है। वेद, वेदान्त, और तन्त्र आदि ऐसा कोई शास्त्र नहीं जो उनका जाना न हो। वे सभी विद्याओं में पारङ्ग्य हैं। उनकी बुद्धि-विद्या कैसी है वह आप इतने ही से समक्त सकेंगे कि स्तयं विशिष्ठ ने उनसे वेद, परशुराम ने धनुवेंद श्रीर मैंने गान्धर्व-निया सीसी है।"

यह सुनकर दत्त का सुँह प्रफुल्लित हो गया। उन्होंने कहा—"वरकाबल पराक्रम कैसा है ?"

नारदं—''उसका परिचय उनके पिनाक धनुष से ही हो सकता है। उसका प्रत्यचा चढ़ाना तो दूर रहा, भूमण्डल में ऐसा कोई नहीं जो उसे उठा सके। कैलासपित ने इसी धनुष पर बाया चढ़ा कर त्रिपुरासुर को मारा था।"

रानी---''वर देखने में कैसा है ?''

नारद—"यह श्रापसे क्या कहूँ। वैसा शाल (साल्) वृत्त सा लम्बा श्रीर दृढ़ शरीर, वैसा श्राजानुवाहु, वैसा श्राकर्ष-विशालनयन, वैसी कपूरसी गोराई, वैसा सतत प्रसन्नसुख किसी का नहीं देख पढ़ता। वे महापुरुष सती ही के दहने भाग में शोसा पाने योग्य हैं।"

सती की एक सखी, जिसका नाम विजया था, किसी कार्यवरा रानी के पास आई थी। सती के व्याह की वातचीत सुनकर वह दीड़ कर सती के पास गई और वोली—''सखी, तुम्हारा मनेरथ असकत हुआ। तुम इतने दिन जिनके लिए तपस्या कर रही थीं, जिनका व्यान तुम्हारे मन में आठों पहर बना रहता है, उन्हीं कैलासपित के साथ तुम्हारे व्याह की वातचीत हो रही है।''

सती कुछ न बोली। केवल अपने दोनों कर-कमलों को जोड़ कर उत्तर ग्रीर मुँह करके उसने शंकर को प्रणाम किया। 5

इधर फिर रानी ने नारद से पूछा—"वर के पास धन-सम्पत्ति भी है ?"

नारद--"रलगर्भ कैलास उनका राज्य है। यचों के राजा कुवेर उनके भण्डारी हैं।"

धन के विषय में नारद को इससे अधिक परिचय देनान पड़ा । कैंनि ऐसी धनाभिलापियी स्त्री होगी जिसने धनाधिप कुर्वर का नाम न सुना होगा। हीरा, मोती, मानिक, नीलम ध्रादि भाँति भाँति के रत्न जिसके घर में पाये जा सकते हैं वही कुचेर जिसके भण्डार-नवीस हैं उसकी अतुल ऐधर्यराशि का हिसाव कीन कर सकता है ?"

रानी ने उमेंग कर पूछा-"वर के माता, पिता, भाई श्रीर चहन जीवित हैं ?"

नारद ने मुस्कुरा फर फहा-- "वर में यदि कुछ दोप है तो इतना ही। उनके वंश में कोई दूसरा नहीं है। इसका श्राप कुछ सोच न करें। सास ससुर सदा सब के जीते नहीं रहते। व्याह होने के साथ हमारी सती कैंबास की रानी होगी।"

रानी ने नारद की श्रोर खोरी चढ़ा कर देखा। नारदजी वेाले---"मैं वर के विषय में दो एक वात श्रीर श्रापसे

कह देना उचित समभता हूँ । वह दोप हो या गुग्र, श्राप उस पर विचार करलें। कर्तव्य अकर्तव्य का निर्याय पहले ही कर लेना चाहिए। पीछे प्राप लोग मुक्ते कोई इलज़ाम न दें, इसलिए जो जानता हूँ वह श्राप लोगों से अभी कह सुनाता हूँ । वर संसार से एकदम विरक्त है। उसके लिए जैसा घर वैसा मरघट, जैसा चन्दन

÷

वैसी ही चिवा की भस्स । वे सदा चिन्ता में मग्न रहते हैं, किन्तु जनकी चिन्ता कुछ अपने सुख-सन्भोग के लिए नहीं, संसार के कल्यास के लिए । उनका अधिकतर समय रमशान में रहकर युदों की हड्डी की परीचा में, जङ्गल में रहकर पीधों के गुसापुग्र के विचार में, और पहाड़ की गुफा में रहकर खान से निकलने वाली वस्तुओं के तत्वनिरूपस में व्यतीत होता है। तत्वनिरूपस के लिए वे विषपान में और सर्प के धारस में भी कभी कुण्ठित न हुए। इन्हीं कारसों से वे गृही होकर मी संन्यासी और राजा होकर मी फ़क़ीर हैं। मैंने वर के दोष-गुस, आचार-अनाचार सभी आपको सुना दिये। अब आप लोगों का जैसा विचार हो करें।"

यह सुनकर दच का सुँह मारी हुआ। वे बार वार सिर हिलाने लगे। क्या करना चाहिए, इसका वे कुछ निश्चय न कर सके। रानी की एक चतुर दासी वहाँ बैठी थी। उसने रानी की चिन्तत देखकर कहा—"महारानी जी, आप कुछ चिन्ता न करें। वे माँ-आप के कितने ही ऐसे लड़के हैं जो घरवार का काम छोड़ कर इधर उधर धूमते, फिरते हैं। हमारी सती यदि और राजकुमा-रियों की भाँति चतुर होगी तो एक ही महीने में अपने पित को पका गृहस्थ बना लेगी।"

थह सुनकर रानी को कुछ धैर्य हुद्या। उसने पित से कहा— "सव गुण एक साथ कहाँ मिलेंगे ? लड़की को योग्य वर के हाथ
सोप देना माँ बाप का कर्तन्य है, हम इस कर्तन्य का पालन
करेंगे। इसके अनन्तर लड़की का जैसा भाग्य होगा। वर जब रूप,
गुण, वल, पराक्रम और धन में किसी से न्यून नहीं हैं तव सती को उन्हीं के साथ व्याह देने की मेरी इच्छा होती है। फिर महा-राज की जैसी इच्छा हो।"

दत्त— "विधाता को जो करना है, वह मैं समक गया। सुके ढर था कि जड़की जैसी पगली है, कहीं वैसे पागल वर के हाथ न पड़े। ठीक वही हुआ। जब तुम्हारी इच्छा है तब इसी वर की बात स्थिर रहे।"

इस पर प्रधिक तर्क-वितर्क करने को ग्रावश्यकता न रही। फैलासपित के साथ सती के ज्याह को वातचीत ठीक हुई। महाराज दच बड़ी धूमधाम के साथ जड़की के व्याह की तैयारी करने लगे।

ग्रुभ दिन ग्रुभ घड़ी में सती का ज्याह हो गया। राजभवन जितना दीपमाला से देदीज्यमान न हुच्या उतना राजकुमारियों की उज्ज्ञल रूपराशि से हुज्या। नारद ने वर के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, सच कहा था। जटाजूट के मीतर से भी उनका मुख-मण्डल पूर्णचन्द्र की भीति और भरमलेपन के भीतर से भी उनके शरीर की गोराई मलक रही थी। यह देखकर राजधराने की जितनी खियां ग्रीं सब मुख्य हो रहीं। महस्ते भर का खियों ने एक स्वर से कहा—"जैसी सती है, वैसा ही उसे मगवाग ने वर दिया। केवल रानी के मन में यह सोचकर कुछ जोम हुआ कि नारद में जो उनके ग्रुलुल ऐस्पर्य की वात कही थी, वह दूरहे के ज्यवहार से कुछ ज़ाहिर न हुई। विवाह के दिन भी उनके गले में रुद्राच की माला, शरीर में मस्म ग्रीर कमर में वाघ का चमड़ा था। सती के लिए भी वे ग्रुपना ही सा भूष्याचसन लाये थे। यह देखकर रानी चुच्य हो रही। यह क्या ! यदि ऐसे महोत्सव में उन्होंने सती को अच्छा मृष्ण-वल न दिया ते। फिर कव देंगे ? किन्तु नारद ते। ऐसे नहीं हैं जो भूठ वोलेंगे। कदाचित ने घर की असली हालत न जानते हीं ?"

रानी को इस प्रकार सोच-सागर में ह्वी हुई देखकर निसन्त्रित बन्धुपत्नियों में से एक ने कहा—"जब दूल्हे के माँ-वाप, साई-बन्धु या माँ-बहन कोई नहीं है तब दूल्हे को विवाह के योग्य वस्न कौन सजाकर पहनाता, कौन जनका विवाहकालिक नेश-विन्यास करता। दूल्हा आप ही तो अपनी सूरत सँवार कर व्याह करने नहीं जाता है। ये जैसे, जिस पोशाक में अपने घर पर बराबर रहा करते थे,

वैसे ही, उसी पोशाक में, यहां आये हैं । आप इसके लिए सोच न करें ।" एक दूसरी स्त्री ने कहा—''सती के साम्य में धन-सम्पत्ति का सुख-संभोग लिखा होगा तो अवश्य ही होगा । आप स्वयं रानी हैं और यह आपकी दुलारी राजकुमारी हैं । इसे किस बात का कष्ट होगा १ ऐसी एक लड़की की कौन बात, दस लड़कियों का भी

त्राप अलीभाँति पालन-पोषण् कर सकती हैं।" यह बात रानी को अच्छी न लगी। उन्होंने नारद से पूछा—

िभापने जो दूल्हे की उतनी धन-सम्पत्ति की बात कही थी, उसका - कुळेपमाख देखने में न ब्राया। दूल्हा मेरी सती के लिए न कोई अच्छे कपड़ा लाया न कोई मुक्ख। विवाह के समय में लड़की

को के ज्ञ की माला ! यह क्या ? मेरी बेटी संन्यासिनी तो है नहीं । राजकन्या को आपने कंगाल से तो न व्याह दिया ?" नारद—"मैंने आपसे कोई बात मूँठ न कही थी। मेरे वचन पर आप विश्वास करें। आपको सती सचसुच ही राजराजेश्वरी हुई है। अभी आप कुछ न बेालें, कुछ दिन धैर्य से रहें। सती जब एक बार ससुराल से होकर आवेगी तब आप देखेंगी कि सती का कैसा भूग्य-वसन है। तब आप सममेंगी कि आपके जामाता कैसे ऐश्वर्यशाली हैं।"

यह सुन कर रानी और उनकी सब सहचरी प्रसन्न हुई । दुल्हें के व्याह के समय का पहनावा श्रीढ़ावा श्रीर उनके वरातियों की श्रजीय सूरत शकल देख कर राजा दत्त की भी पूरी ख़ुशी न हुई। उनके श्रन्यान्य जमाई श्रीर नावेदार लोग हाथी, घेाड़े श्रीर रथ पर श्राये घे, किन्तु उनके नये दामाद श्राये थे, एक ृत्व मोटे ताज़े, ऊँचे सींग वाज्ञे वैल पर। श्रीर जामा-ताओं के साथ आये थे, हाथ में सेाने की छड़ी छत्र आदि लिये ध्यञ्छे **अच्छे भूपण-वसन से सुस**ब्बित सुन्दर नैकर, किन्तु नये दामाद के साथ धाये थे हाथ में त्रिशूल लिये नङ्ग धढ़ङ्ग नन्दी। बरावियों का भयङ्कर आकार और अद्भुत भाव देख कर कनखल के रहने वाले श्रीर लोग भी भयभीत श्रीर चिकत हुए । उन होगों ने कहा, "महाराज ने यह कैसा सम्बन्ध किया है ?" किन्तु जो उनमें समभदार थे, उन्होंने सबको सममा दिया कि यह क्र**छ र्रह**ें बाव नहीं है, पहाड़ी लोगों का रङ्ग रूप श्रीर भाव ही ऐसा होता है। वर का निरुद्धल भाव, सरल व्यवद्वार श्रीर सदा प्रसन्न मुखं देख कर पुरवासियों के मन का चोम क्रमशः जाता रहा।

राजा, रानी श्रीरं पुरवासियों के मन का भाव ऐसा ही था।

सती के मन का माव कैसा या यह कहने की स्रावश्यकता नहीं। साधु-संन्यासियों के मुँह से जिनकी प्रशंसा सुन कर सती जिन्हें इष्टरेव समभ कर नित्य हृदय में पूजती थीं, श्राज वही उसके सामने पित के रूप में विराजमान हैं। सती के मन का भाव क्या शब्दों के द्वारा समकाया जा सकता है ? चारों आँखें बराबर होते ही सती ने सम्पूर्ण रूप से अपने को कैलासपित के चरणकमलों में अर्पित कर दिया। उनका वह चारुचन्द्रविनिन्दक सुँह, उनका वह रजत पहाड सा गाँर शरीर, ऐरावत गजग्रुण्ड सा विशाल दीर्घ बाहु, किवाड़ के तख्तें की सी चैड़ी छाती, कमल से भी कोमल श्रीर सुन्दर चरण सती के मन में विहरने लगे। सती ने ध्यानस्थ शङ्कर की रमगीय मूर्ति से निवेदन किया—''नाथ ! श्राप ही सती के सर्वस्व हैं। प्राप ही के लिए सती का जन्म हुआ है। ईश्वर सुभे श्रापकी सहधर्मिग्री होने की योग्यता दे। मुक्ते वह ऐसा ज्ञान दें कि मैं स्रापके चरहों की मलीमांति सेवा कर सक्टें।"

ज्याह होने को पीछे सती शङ्कर के साथ कैलासपुरी गई। सती के श्रागमन से कैलासपुरी ने नवीन शोमा धारण की। फूलों में सुगन्ध बढ़ गया। पिचयों की सङ्गीतध्विन में विशेष माधुर्य का अनुभव होने लगा। विरक्त कैलासपित सती को पाकर संसारी हुए। धर्म-कर्म के प्रभाव से सती पित की श्रर्धाङ्गिनी बन सुख भेगने लगी।

इस प्रकार कुछ काल व्यतीत होने पर वसन्त ऋतु के श्राने से कैलास ने एक ग्रपूर्व ही शोभा धारण की । दिन राव लगातार पाला पढ़ने से कैलास के दृच-खतागण फूल-पत्तों से रहित होकर श्रीद्वीन हो गये थे। श्रुतुराज से उनकी यह दुईशा न देखी गई। उसने उन पृच-स्ताओं को नव पढ़वों से सुरोगियत कर दिया। सब पेड़-पीये हरे भरे हो गये। पर्वत-राज कैसास ने सफ़्रेंद वर्फ़रूपी

सब पेढ़-पीघे हरे भरे ही गये। पर्वत-राज फैलास ने सफ़ेद वफ़्रेस्पी वसन ट्याग कर रीवाल (सेवॉर) रूपी स्थामल वक्त धारण किया। धजले, पीले, श्रीर लाल श्रादि रङ्ग रङ्ग के फूल विकसित होकर कैलास की रोगमा बढ़ाने लगे। वर्फ़ गल कर सैकड़ें। धाराश्रों के रूप में नीचे की श्रीर प्रधावित होने लगा। जाडे के डर से जो

सब प्राची कैलास छोड कर उज्जा-प्रधान देश में चले गये थे.

डनके झाने से कैंडास फिर सर्जाव हो उठा । कैंडास का उपवन फिर से खहलहा उठा । सारा उपवन अमरों के मैंकार से मर गया। जहाँ वहाँ पेड़ों पर कोयल और पपीहों का मधुर राज्य सुनाई देने लगा । अक्षान्व भीरक्सभाव कत्त्री-मृत गये एल के लोभ से फिर पहाड़ के निम्न प्रदेश से घीरे धीरे बहाँ आले लगे। चमरी गाय पत्यर के हुकड़े पर खड़ी होकर नाक के छेदों को प्रसारित कर वसन्वकालिक शांतल मन्द सुगन्धित वायु के सुख-पर्श का अनुभव करने लगी। सारांग यह कि अधुराज के झागमन से कैंलास के पेड-पीये, और लुताओं ने तथा पशु-

पिचयों ने फिर से नई स्कूर्ति और नवीन जीवन का लाम किया।
पर्वत के एक बहुत ऊँचे दुर्गम शिखर पर महादेव के रहने
का अव्यन्त स्वच्छ सुन्दर आश्रम बना था। उसके चारों श्रीर बड़े
बड़े ऊँचे देवदारु के पेड़ खड़े थे। बड़ी उनके निवासस्थान की

चारों ग्रेगर से घेरे हुए किले का काम दे रहे थे । वह स्थान ग्रत्यन्त रमणीय, निर्जन श्रीर प्रशान्त या । तपानन की गम्भीरता के साथ उपवन की शोभा सम्मिलित होने से वह स्थान तपश्चर्या थ्रीर गाईस्थ्य सभी सुखभाग के उपयुक्त हो रहा था। उस स्थान के सभीप एक वहुत पुराना देवदारु अपने डाल-पत्तों को चारों थ्रोर फैलाये खड़ा था। उसके नीचे सघन छाया में स्थमावनिर्मित एक् शिलामय वेदी (चबूतरा) थी।

एक दिन साँभ को उसी चत्रूतरे पर व्याव्रचर्म का आसन विछाये कैलासपित वैठे थे । उनके वाम भाग में सती वैठी थीं। एक जङ्गली लता देवदारु के पेड़ से लिपट कर भूम रही थी। सायङ्काल की हवा लग कर उस वृत्त की शाखायें मन्द मन्द डोल रही थीं, जिससे बीच बीच में दी एक फूल मुख् कर उन दोनों देव-दम्पती को ऊपर गिरते थे। मानो वे लता-वृत्त भक्ति-भाव से पुष्पा-क्जली देकर उनकी पूजा कर रहे थे। शिव के मस्तक पर जटाजूट, कण्ठ में रुद्रास की माला, सर्वाङ्ग में विभूति श्रीर कमर में बाघम्वर शोभा दे रहा था। सती का भी वेश-विन्यास पति के अनुकृत ही था। वह गेरुवा वसन पहने थी। गले में रुद्राचा की माला श्रीर हाथों में चुड़ी के स्थानापत्र खाच शोभा दे रहा था। उसकी खुली हुई केशराशि पीठ पर से लटक कर धरती पर लोट रही थी। उन देानों के पास ही हाथ में त्रिशूल लिये नन्दी खड़े थे। देानेंा दम्पती के मुँह श्रस्त कालीन सूर्य की सुनहरी किरण पड़ने से बहुत सुन्दर मालूम होते थे। तन्दी उछासपूर्वक निर्निमेष दृष्टि से वह स्रपूर्व शोभा देख रहे थे। पितृवत्सल पुत्र जिस भाव से माता-पिता को, अनुरक्त प्रजा जिस भाव से राजा रानी की, और साधक भक्त जिस भाव से ग्रपने इष्टदेव श्रीर देवी को देखते हैं उसी भाव से नन्दी चुपचाप १६ पतिष्रता।
सती शङ्कर को देख रहे थे। कैशासपति सती के साथ संसारी
जीवों के सुरा-दुःख के सम्बन्ध में बातबीत कर रहे थे। उपवन

में पशु-पत्ती, पेढ़-पीधे नि:शब्द श्रीर निस्पन्द शिकर उन दोनों का

नातीलाप सुन रहे थे। घला होते हुए सूर्य की ओर लक्त्य करके महादेव ने सती से कहा—"फियतमें! देखों, जो सूर्य्य हतनी देर प्रमत्ती उच्चक किरवों से संसार में उजेता किये हुए थे। उनका ज्यब न वह तेज हैं न वह प्रकार। कुछ ही देर में वे प्रमाहीन होकर अहरण हा जायेंगे। संसार में मतुष्य का जीवन भी ऐसाड़ी अतित हैं। जो आज जात्मोरक से देरीच्याना हो रहे हैं, वे कहा किसी अस्पकार से भरे गढे में छिप जायेंगे, किन्दु मतुष्य ऐसे

भ्रान्तिगील और प्रमादी होते हैं कि इस चर्णस्थायी जीवन के सुख-दुःख को चिरस्थायी समभते हैं।" सवी ने कहा—"नाथ, सुद्धं का जैसे चदय अस होता है क्या सलुष्य का भी बैसे ही होता है ?" महादेय—"हां, ऐसा ही कुछ है। साधारण लोग जिसे जन्म-सुरुष्ठ कहते हैं, आतो लोग जसी को उदय-अस कहते हैं।

महावम—"दा, पत्ता हा कुछ हा। सावारण ह्यागा जास जन्म-मुख्यु कहते हैं, ज्ञानो होगा जसो को उपय-अद्यक्त कहते हैं। फिन्तु सूर्य के हैं निक उदय-अस्त के साव उनकी व्योति का जैसे कुछ एरियर्वन हाजित नहीं होता वैसे सावय-जीवन का नहीं। अप्लेक सर-अन्य के साथ सहाय उत्तरोत्तर ज्ञान हाम करके उनति अवस्था को प्राप्त हो सकता है।"

प्रवस्था को प्राप्त हो सकता है।" "सनेक सम्पर्धारिकानने साकि वर्षातीना

प्राप्त होते हैं---

''श्रनेक जन्मसंसिद्धस्त्रते। वाति परांगतिम्'' केवल जो लोग धर्महोन हैं वही दिस दिन श्रधोगति को प्राप्तुरीं योनिमापन्ना मूढ़ा जन्मनि जन्मनि । मामप्राप्येव कौन्तेय ततो यान्सधमां गतिम् ॥

सती—''तो क्या धर्महीन जीव की गति नहीं होती ? क्या ने दिनों दिन अधोगित को ही प्राप्त होते हैं ?''

महादेव—"नहीं, ऐसा नहीं होता। जीव और ब्रह्म में भेद नहीं है। समस्त पापा का प्रायिश्वत्त होने पर जीव परमगित को प्राप्त होता है, यही प्रकृति का नियम है। कर्म निःशेष होने पर जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है। जीव को ग्रुभाग्रुभ कर्म का अवश्य भोग करना पढ़ता है।"

"ग्रवश्यमेव भोक्तव्यं छतं कर्म शुभाशुसम्"।

इस प्रकार दोनों परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। ऐसे समय में कुछ दूर पर अत्यन्त मधुर-वीणा का शब्द सुनाई देने लगा। साथ ही इसके कुछ गाने की भी आवाज आने लगी। यह मीठे खर से गाता हुआ कौन आ रहा है ?

"जय जय शंकर कैलासपती"

"वाम भाग में सती विराजत ऋति श्रानन्दमती। ऋङ्ग विभृति जटा सिर सोहत त्रिभुवननाथ यती॥"

सती को यह स्वर बहुत दिन का पहचाना था। सुनते ही उसके सारे शरीर में रोमाध्व हो आया। वह गद्गह कण्ठ से बोली, "यह स्वर और किसका होगा? मेरे चचा महर्षि नारद आ रहे हैं।"

इतने ही में अपनी उज्ज्वल कान्ति श्रीर विशद सुसकुराहट से दसो दिशाश्रों को विकसित करते हुए नारद जी वहां आ पहुँचे। परस्पर यद्याचोग्य अभिवादन और अध्यर्थना के पश्चात नव नारह खब्ध होकर बैठे वब सती ने ज्यसे पूझा—''कनखल का क्या समाचार हैं ? मेरे माता, पिता और बहने' आदि सब खेग अच्छे तो हैं ?ग

ं नारर—''समाचार अच्छा है। तुम्हारे माता, पिता श्रीर बहन श्रादि सब लोग अग्रतपूर्वक हैं।''

सती—''मेरे पिता जी ने इतने दिन मेरी कुछ खोज-ख़बर क्यों न लो ?"

मारद---''तुम्हारे पिवा श्राज कल वड़े काम में हैं। वे एक महायहा की श्रायोजना कर रहे हैं। इस यह में उन्होंने भारत के क्या राजा, ज्या रहू, क्या पिट्टा, क्या मूर्क, क्या वहे, क्या छोटे, सभी को नेवता हेंगे। मालूम होता है, उसी यह-सम्बन्धी महासमा-रीह के कारण व तुन्हारी सुध न हो सके।''

सती ने हुलस कर पूछा—''च्या चाप पिता की द्याहा से समक्तों उस यह में ले जाने के लिए यहाँ चाये हैं ?''

नारद---''नहीं, मैं जा यहां झाया हूँ, यह तुन्हारे माता पिता किसी को मालूम नहीं। मैं इस मार्ग से कहीं जा रहा था। बहुत दिनों से तुन्हें न देखा था। इसी से सम्बम् तुमको देखने आया हूँ।"

सती—'पिता यह की इतनी खड़ी तैयारी कर रहे हैं, देश-देशान्तर के लोगों की नेव्छ भेज भेजकर जुला रहे हैं, इस लोगों की. न इसकी खनर दी न नेव्ता भेजा! इसका क्या कारण ?"

ं नारह—"इस बात का उत्तर मैं क्या हूँ ? तुम्हारे पिता की

मतिश्रम हुआ है । सुना है, इस यज्ञ में वे तुमको नेवता न हेंगे।"

यह सुन कर सती को बड़ा श्रारचर्य हुआ। उसने भग्नखर में पूळा—''हम लोगों का श्रपराध क्या है ?"

नारद—''सुना है, कैलासपित के व्यवहार से उन्होंने अपने को अपमानित समका है। उसी अपमान का बढ़ला लेने के लिए वे अपने समस्त बन्धुबान्धनों और क़ुटुम्बों को नेवता हेंगे, केवल सुमको नहीं।"

सती--''मेरी माँ को यह बात मालूम हैं ?"

नारह—''मालूम है। उसने अपने पित से बहुत अनुरोध किया था, किन्तु उन्होंने पत्नी का अनुरोध न माना। रानी ने मारे सोच के अन्न-जन त्याग दिया है। तुम्हारी चिन्ता से उसे रात को नींह महीं आती। अब इन वातों की आलोचना से कुछ फल नहीं। मुभी दूसरा काम है। मैं जाता हूँ।'' यह कह कर नारह चलो गये।

सती ने विनयपूर्वक कैलासपित से कहा—"पिता आपके व्यवहार से अपने को अपमानित समभ्क कर रुष्ट हैं, इसका अर्थ मेरी समक्त में कुछ न आया।"

. कैलासपित ने कहा—''देवी, मैंने उनका अपमान नहीं किया है। किसी को अपमानित करने का मेरा ख़माव नहीं है। असल वात यह है कि, कुछ दिन हुए, किसी सभा में अन्यान्य देवताओं के साथ मैं भी बैठा था। तुम्हारे पिता प्रजापित जब उस सभा में आये, तब और लोगों ने उनका जिस प्रकार खागत किया मैं उस प्रकार उनका खागत न कर सका। सुना है, तभी से वे सुम्म पर क़ुद्ध हैं स्त्रीर सुफको अपमानित करने का उपाय खेाज रहे हैं। दुम्हारे मन में खेद न हो, इस मय से मैंने इतने दिन तुमसे यह बात न कही थी।"

सवी—"नाथ, मेरी एक प्रार्थना है। ग्रापकी श्राहा पाऊँ ते। मैं एक वार कतलाल जाऊँ। पिता को सब बात समस्मा कर फिर शीघ ही यहाँ चली आऊँगी।"

महादेव---''यदि श्रवसर दूसरा रहता तो जाने में कोई वाधा न श्री। किन्तु अभी जाने से वे क्रोधवरा तुम्हारा श्रपमान करें तो कोई आरचर्य नहीं।"

सती—''मेरा श्रपसान वे क्यों करेंगे ? मैंने तो उनका कोई श्रपराध नहीं किया है।''

महादेव—''तुम यहां सरलहृदया हो । तुम प्रजापित के समाव से मली मांति परिचित नहीं हो । अपने घमण्ड में चूर होकर ऐसा कोई अग्रुक्त काम नहीं है जो ने न कर सकें । जब उनके मन में यह धारखा हुई है कि मैंने उनका अपमान किया है तब सुयोग पाकर मेरा या मेरे अभाव में तुम्हारा अपमान करने में ने ज़रा भी संकोच न करेंगे । तुम स्वयं इस बात को सोच सकती हो कि जब उन्होंने हम लोगों का अपमान करने ही के लिए इस यहा का आरम्भ

किया है तब विना बुलाये इस यह में जाना रुचित है या नहीं।'' सती—''नाथ ! मेरी समम्म ही कितनी कि इन वातों का तस्त्र जान सकूँगी। वात यह है कि वेटी को बाप के घर जाने में

निमन्त्रस्य की क्या ज़रूरत हैं ? विशेष कर जब देवर्षि नारद कह गये हैं कि मेरी माँ ने मेरे लिए खाना पीना छोड़ दिया है। यह सुनकर मी अपमान के भय से उनके पास न जाना क्या मेरे लिए उचित होगा ?"

महादेव—''इस बात का कोई उत्तर नहीं है। जब तुम्हारी इच्छा जाने की है तब जाओ । वहां की अवस्था देख भालकर काम करना । परन्तु सुभे आशङ्का होती है कि इस यज्ञ का परिणाम, मेरे, तुम्हारे या प्रजापित, किसी के लिए अच्छा न होगा।"

नन्दी ने महादेव की आज्ञा पाकर बात की बात में सती के. कनखल जाने का सब प्रबन्ध ठीक कर दिया । सती ने पिता के घर जाने के लिए कोई नया भूषण-वसन धारण न किया। जिस तपस्तिनी मेस से वह कैलास में थी, उसी भेस से वह कनखल गई। उसके कण्ठ में स्फटिक की माला, हांथ में रुद्राच की चूड़ी, अङ्ग में विभूति, खुली हुई आगुल्फलम्बित केशराशि और गेरुवा वछ, इससे अधिक उसके वेश-विन्यास में और कुछ न था। कन-खलवासियों में जिन लोगों ने सती की बाल्यावस्था में देखा था, चन लोगों ने नवोदित उषा की भाँति उसकी तेजखिनी मृठि^९ देख कर आश्चर्य भरे भाव से भूमिष्ट होकर उसको प्रणाम किया। सती किसी से कुछ न कहकर महल के भीतर जिस घर में रानी घरती पर पड़ो हुई रो रही थी, एकाएक वहीं जा पहुँची, और माँ को अलन्त दु:खाकुल देखकर मधुर खर में बोली—"माँ, मैं घापको देखने आई हैं।".

संजीवन सन्त्र की माँति वह सुधासिक मधुर खर रानी के कान में प्रविष्ट होते ही वह चैंकि उठी श्रीर ग्राँख के सामने सती को देख कर बढ़े प्यार से उसे छाती से लगा कर बोली—"मेरी वेटो ! तुम आ गई ?" यह कह कर वह धार वार उसका मुँह चूमने और वलैया लेने लगी ! दोनों माँ-वेटियों की आंखों से प्रेमाश्र की धारा वह चली ।

सती ने कहा—"माँ, मैं एक बार पिता को देख आती हूँ।" रानी—"नहों बेटी, महाराज अभी यहाशाला में हैं। वहाँ जाने का कुछ काम नहीं।"

सती—"मां, मैंने पिवा को बहुत दिन से नहीं देखा, जी लगा है, एक बार उनका दर्शन कर फ्राती हूँ।"

यह कह कर रानी को कोई वात वोलने के पूर्व ही वह यह-शाला की ग्रोर चल दी।

राजभवन के सामने ,खूव लम्ने चैं। है भैदान में यह की घ्रायो-जना हुई थी। नाना देश-दिशाओं से साधु, संन्यासी श्रीर दर्शकगण वहाँ ध्राये थे। राजा दत्त के जैसे ऐश्वर्य की सीमा न घी वैसे ही उनकी यह-सामग्री का भी ध्रम्त न था। उत्तर रेशमी कपड़े का

पहा आय थे। राजा दच के उस्स एक्षय को सामा न था। चस हा जनकी यह-सामग्री का भी धन्त न ग्रा। उत्तर रेशमी कपड़े का बहुत बड़ा शामियाना खड़ा था, नीचे यह की वेदी थी। पुराहित-गख यहवेदी पर भण्डलाकार चारों छोर वैठे थे। उनके वीच में

दच प्रजापित विराजमान थे। पवित्र होम का धुआँ चारों ओर उड़ रहा था। बार बार आहुति देने से प्रव्वक्रित आप्रि का उत्ताप लग कर दच का मुँह लाल हो गया है, जिससे ने साचाल् मूर्तिमान् आप्रदेव की मांति दिखाई दे रहे हैं। सती को आते देख कर

जितने वहां होग ये सभी ने सम्मानपूर्वक रास्ता छोड़ दिया। सती ने पिता के चरणों के समीप जाकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। कुछ देर के लिए पुरोहितों के कण्ठ में बेदमन्त्रों ने विशास पाया। हवनकर्ता का द्वाय धाहुति देने से रक गया। प्रजापति ने इसका कारण हुँ इने के लिए दृष्टि उठा कर देखा। सती हाथ जोड़े उनके सामने थहानेदी पर खड़ो है। सती को देख कर उनका सुख प्रसन्न हुआ। वे स्तेह भरे मीठे स्वर से बोले—"सती, तुम भी आई ?"

किन्तु कुछ ही देर में उनका भाव वदल गया। उनकी भीं जपर को तन गई। ग्रुँह अस्तकालीन सूर्य की भांति लाल हो. गया। उन्होंने कर्करा स्वर में कहा—''सती, तू यहां क्यों आई? किसने तुभको यहां आने कहा?'' पिता के विषाक बाख की भांति इस कठोर घचन ने सती का मर्मच्छेद कर डाला। जन्म से आज तक पिता के ग्रुँह से उसने ऐसा कठोर वाक्य कभी न सुना था। वह आंखों के आंसुओं को रोक कर बोली—''मैंने बहुत दिनों से आपको न देखने आई हैं।''

सती की इस करुणा भरी वाणी ते समास्थ सभी लोगों के हृदय की द्रवित कर दिया। किन्तु वह वाणी दत्त के हृदय की न पिषला सकी। उन्होंने फिर कड़क कर कहा—"तुमको किसने यहां आने कहा ? मैंने तो तुम्मे बुलाया नहीं।"

सती---''माता-पिता के दर्शनार्थ त्राने के देतु सन्तानों को बुलाने की क्या आवश्यकता है ? मेरा ते। यह अपना घर है। मैं बिना सुलाये ही आई हूँ।"

दच-"यह बात प्रजापित की कन्या के मुँह से बाहर होने

थोग्य नहीं । विधाता ने जिस निर्तृज्ञ के हाथ में तुसको सींप दिया है, यह उसी की पत्नी के मुँह से निकलने योग्य है।"

सती—"पिताओं, श्राप उन्हें निर्लंज कह कर क्यों ग्रया गाली देते हैं ?"

दच्च---"निर्लंब कहना गाली हुआ ? पहनने को जिसे कपड़ा नहीं, गृहस्थ है।कर भी जो संन्यासी वना है, उसे निर्लज कहा तो गाली देना हुआ ? अनाचारी होने के कारण खर्ग लोक में रहने को जिसे जगह नहीं, घर श्रीर श्मशान, चन्दन श्रीर चिता की राख, अमृत और विष जिसके लिए वरावर है, वह निर्लंड ही

नहीं, पागल है ! ज्ञानशून्य है !" सती---''भ्रच्छा, वे निर्लूच ही हो किंवा उन्मत्त ही हैां, वे मेरे देवता हैं। श्राप व्यर्थ उनकी निन्दान करें। उनकी निन्दा सुनने की श्रपेचा मेरा मर जाना श्रच्छा है।"

''दक्त का सारा शरीर कोध से काँपने लगा । वे कुछ वीलना चाहते थे, परन्तु क्रोधाधिक्य से उनके मुँह से कोई शब्द न

निकला।"

सती--- "श्राप क्रोध न करें। चमा की जिए। यदि हम लोगों से कोई अपराध हो पड़ा है तो कहिए, क्या उस पाप का कोई प्रायश्चित्त नहीं है ?"

दत्त---''प्रायश्चित्त है। तुम्हारे मरने ही से प्रायश्चित्त होगा। मैं जिस दिन सुनूँगा कि तुम मर गई, उस दिन मैं समफूँगा कि उस अधम के साथ मेरा सम्पर्क न रहा। जिसके साथ सम्बन्ध नहीं उसके साथ रागद्वेष कैसा ?"

सती—''तो यही ग्राप चाहते हैं ? यही श्रापको श्राज्ञा होती है ? क्या बिना मेरी मृत्यु के श्रापका क्रोध शान्त न होगा ?" दच—''नहीं।"

सती—'' आप धीरज घरें । वही होगा । यदि मेरे सरने से आपका कोध दूर हो, आपके गैरव की रचा हो और हम सवें के अपराध को आप भूल जायें तो इससे वढ़ कर मेरे लिए मुख की मृत्यु और कव होगी ? मैं आपकी आजा का पालन कहाँगी, किन्तु आप उनकी निन्दा न करें।"

यह कह कर सती यज्ञकुण्ड के एक श्रोर योगासन लगा कर वैठ गई। उसने उत्तराभिमुख हो कर श्रपने गेरुवे वसन से पैर से सिर तक सर्वाङ्ग ढक लिया। सभास्थ सव लोग विस्मित होकर चित्र-वत् इस श्रपृर्व दृश्य को देखने लगे। सती का क्या उद्देश्य है, किस लिए सर्वाङ्ग को वस्त्र से श्राष्ट्रत करके योगासन लगा कर वैठी है—यह किसी ने न समभा। इसलिए किसी ने रोकने की भी चेष्टा न की। देखते ही देखते सती के शरीर से एक श्रद्धुत ज्योति निकली। उस ज्योति से होमकुण्ड की ज्वाला निष्प्रम हो गई श्रीर वह ज्योति सती के ब्रह्मरन्त्र से निकल कर श्रनन्त प्रकाश के साथ कुछ काल में श्राकाश में छिप गई। दृटी हुई देव-मूर्ति की माँति सती का स्यूल शरीर चल स मर में धरती पर गिर पड़ा, फिर उठा नहीं।"

दच के यज्ञ का परिणास क्या हुआ, इसका उस्लेख करने की कोई आवश्यकता नहीं। प्रतीकार का सामर्थ्य रखते हुए पुत्रगण जिस बेददीं के साथ अपने मातृष्ठाती को मार कर हृदय का शोक मिटाते हैं, कैलासपति के दूतगर्णों ने उसी प्रकार बड़ी

पतिव्रता । निष्ठरता के साथ सहायकसहित दत्त को मार कर सती की मृत्य

२६

वहाँ ध्रव उसका चिद्व मात्र नहीं है । जहाँ सती ने योगविधि से प्राग्रत्याग किया था वहाँ भ्रव एक छोटा सा कुण्ड मात्र वच रहा है । कनखल राजधानी की न प्रव वह पूर्व की शोभा है न वह सम्पत्ति

का बदला लिया। जहाँ दत्त का सेघरपर्शी विशाल राजभवन था

है। वहाँ के रहने वालों में न श्रव वह पराक्रम है न वह उत्साह है, सभी श्रीहीन दीन स्रवस्था में पड़े हैं । सती के अपमानरूपी

पाप के फल से वह अमरावती को लुजाने वाला कनखल इस

समय रमशान सा हो रहा है । केवल गङ्गा जी ग्रव भी पहले की तरह कलकल शब्द करती हुई उसके संनिकट प्रवाहित होकर इस

पुरानी कहानी का लोगों में प्रचार कर रही है । जब तक इस

भारत-भूमि में गङ्गा की धारा रहेगी तब तक सती के पवित्र चरित्र का कीर्तन घर घर होता रहेगा।

दूसरा आख्यान

सुनीति

हैं कि स्वात में जिसने कभी यमुना के कज्जल जल को शोभा देखी होगी वही जान सकता है कि समुना के प्रवाह में कितनी रमखीयवा भरी हैं। उस यमुना के किनारे एक उपवा

सशोभित था । सारा उपवन वेला, चमेलो, गुलाब, जुही और मीलसरी आदि भाँति भाँति के फ़लों से महँक रहा था । उसी . उपवन के भीतर राजा उत्तानपाद का राजभवन था । उत्तानपाद स्वायंभुव मृतु के पुत्र थे, इसलिए उनके ऐश्वर्य श्रीर प्रताप की बरा-बरी करने वाला उस समय कोई न था । उनके दे। रानियाँ थीं। पहली का नाम सुनीति था श्रीर दूसरी का सुरुचि। दोनी रङ्ग-रूप और गुरा में अनुपम थां। जैसे लच्मी और सरखती से वैक्कण्ठ भवन की शोभा है। वैसे ही इन दोनों रानियों के द्वारा उत्तानपाद के अन्तःपुर की शोभा थी। एक दिन महल के भीतर एक छोटी सी कोठरी में रानी सुरुचि श्रकेली भूमि पर पड़ी थीं। उसके बाल खुले थे। शरीर में कोई गहना नहीं । एक फटा पुराना मैला कपड़ा पहने थी । रोते रोते उसकी दोनों श्रांखें सूज गई थीं श्रीर लाल हो गई थीं। साँस ख़ूब तेज़ी के साथ चल रही थी।

दासीगण कोठरी के द्वार पर खड़ी होकर सम-दृष्टि से उसकी थोर ताक रही थीं। किन्तु उससे कुछ पूछने का उन्हें साहस नहीं होता था। क्रमशः साँक का समय हुआ। राजा उत्तानपाद राजकाज से छुट्टी पाकर मीतर महत्त में आये। किन्तु आज धीर दिन की साँति प्रियतमा सुरुपि को अपनी कीठरी में न देख कर वे उसे खोजते खोजते उसी कोठरी के भीतर जा पहुँचे। पत्नी को उस अवस्था में देख कर उन्हें यहा धाक्षर्य हुआ। उन्होंने सुक्षि का अक्षर्या करते हुए वह जार से पूछा—"यारी! यह क्या? आज तुम इस तरह यहां क्यों पड़ी हो ?"

रानी ने कुछ उत्तर न दिया। उसने प्रपने मुँह को आंचल से इक लिया।

राजा ने रानी के मुँह पर से कपड़ा हटा कर देखा, रोते रीते उसकी आंखें सूज गई हैं और चन्पक से मुखमण्डल ने रक्त कमल की शोमा धारण की है। राजा का हृदय दुःख से मर गया। उन्होंने फिर पूछा—"व्यारी! कही, तुम्हें क्या हुआ है? तुम्हारे नैहर से कोई अनिष्ट संवाद तो नहीं आया है?"

तथापि रानी कुछ न गेलो । तन राजा उसके पास धैठ कर उसका हाथ पकड़ कर प्रखय-त्राक्यों से उसको इस प्रकार समम्माने लगे—"प्यारी तुम ऐसा मलिन बेप किस लिए धारण किये हुए हो ? यदि किसी ने तुम्हारा अपमान किया है तो उसका उचित दण्ड देने के लिए मैं प्रस्तुत हूँ। यदि तुम्हारे मन में किसी तरह का अमिलाय हो तो कहने के साथ उसे पूर्ण हुआ सममो।"

ं इस तरह राजा ने अनेक अनुनय वाक्य कहे पर रानी ने

किसी तरह मान भङ्ग न किया। वल्कि वह श्रीर भी विलख विलख

काम से थक कर तुम्हारे पास श्राया हूँ। मेरा श्रङ्ग श्रङ्ग दुखता है। मैं भूख प्यास से व्याकुल हूँ। ध्रगर तुम्हारी नाराज़गी का कोई सवव हो तो पीछे मान ठानना। श्रभी सुभी कुछ खिलाओ पिलाओ ।"

कर रोने लगी। श्राख़िर राजा ने कहा—"प्रिये! मैं दिन भर के

ग्रवकी वार सुरुचि वठ वैठी। उसका इशारा पाकर चतुर-दासी राजा के मेाजनयोग्य सव सामग्री ले त्राई । सुरुचि ने त्रपने हाथ से नौका लगा कर श्रासन पानी रख दिया। राजा सन्ध्या-बन्दन करके भोजन करने बैठे। रानी उनके पास बैठ कर पंखा

भारतने लगी। भोजन करके हाथ मुँह धो राजा ने रानी को अपने पास विठा स्तेहभरी दृष्टि से उसकी ग्रेगर देखकर कहा-- "प्यारी, तुन्हें मेरी सीगन्द है, क्या हुआ है कहा तो।"

सुरुचि—''महाराज, मैं श्राप की एक दासी हूँ। दासी का इतना आदर क्यों 9"

राजा—"तुम्हारे मन में क्या है, यह मैं नहीं समभ सकता। यदि तुम दासी हो, तो मेरी पत्नी कीन है ?"

सुरुचि-- "पत्नी है सुनीदि । यदि श्राप सुफ्त को पत्नी समफते ते। मुक्ते दु:ख क्या था ? यदि ग्राप मुक्ते दासी ही बना कर रखना

चाहते हैं तो ब्रापने सुमत्से ब्याह क्यों किया ?"

राजा "तुम्हारा क्या सतलब है, मैं नहीं समस्ता। तुस

सुभासे सब बात खेाल कर कहो।" सुरुचि-"श्राप सुना ही चाहते हैं तो मैं कहती हूँ, सुनिए ! किन्तु अपने अपराध की माफ़ी में पहले ही आपसे माँग लेती हुँ। आपके कोई पुत्र न घा, इस कारण पुत्र की कामना से आपने मेरे पिता से मुक्तको माँग लिया घा । ग्रापको धर्मात्मा ग्रीर सत्य-वाडी जान कर पिता ने सीत रहते भी सुभको छाप के हाथ में समर्पम् कर दिया था। वे तो जानते ये कि प्राप सुभको धर्मपती भाव से प्रहस करेंगे। किन्तु---

सुकचि की बात पूरी होने के पूर्व ही उत्तानपाद बोले---"प्यारी ! क्या मैंने तुम दोनों के बीच कुछ विभेद-शुद्धि दिख-साई है ?

सुरुचि-"इस राजमबन का सब से उत्तम कोठा जो सदा यमुना नदी के शीतल जल वायु का स्पर्श करता है, वह व्यापने किसको दे रक्खा है ?"

क्तानपाद--"तुम्हारे व्याह होने के पूर्व ही 'से सुनीति उस कोठे में रहती है, तुम कहा ता उससे सीग्रना सुन्दर रमग्रीय

कोठा तुम्हारे लिए वनवा दूँ।" सुरुचि-- "श्रापके कोशागार में जो सब से उत्तम मोती-माला

है, वह आपने किसको दी है ?" उत्तानपाद---''प्यारी ! मुभे क्यों व्यर्थ दोप देती हो ? वह माला दुर्लभ है, इसमें सन्देह नहीं। मेरे पूर्वजी ने बहुत दिनी

तक वस्तवदेव की ग्राराधना करके पुरस्कार खरूप यह माला उनसे पाई थी। मेरे च्याह होने के पीछे पिताजी ने वह माला सुनीति

को दी। मैंने नहीं दी है। मैंने तुम्हारे लिए भी एक वैसे द्वार की तलाश की थी, किन्तु समुद्र के दिवस तटवर्ती सीदागरों ने कहा कि वैसे मोती अब नहीं मिलते । इसी से मैं अब तक कृतकार्य न हो सका।"

सुकिच ने ज्यङ्ग करके कहा—''इससे चढ़कर मेरा सै।भाग्य और क्या होगा। किन्तु इस प्रकार कपट-प्रेम दिखलाने में क्या फल १ भूषणवस्त्र की बात जाने दीजिए। श्रिप्रदोत्र के समय केवल सुनीति ही क्यों श्रापके साथ बैठती है १ क्या में आपकी सहधर्मिणी नहीं हूँ १"

ज्वानपाद—''तुम भूलती हो। मैंने जो अप्रिहोत्र व्रव धारण किया है वह दो एक दिन के लिए नहीं, जीवन भर के लिए किया है। तुम अभी अल्पवय की हो, तुम्हारा शरीर अलम्ब कोमल है। जपवास का कष्ट न सह सकोगी, इसीलिए सुनीति ही अपने ऊपर कष्ट लेती है। तुमको कष्ट देना नहीं चाहती। विशेषत:—

सुंरुचि---"विशेषतः क्या ?"

राजा—''यही कि वहुत पत्नियों के रहते धर्माचरण में बड़ी पत्नी ही का पहला ग्रधिकार है।"

सुक्षचि—''महाराज ! श्रव श्रापको श्रविक कहना न होगा ।
मैं समक गई। श्रापके राजभवन में मेरे लिए जगह नहीं है।
श्रन्त:पुर का सब से बड़ा कीठा सुनीति का, कोशागार का सर्वोत्तम
रत्न सुनीति का, धर्म-कर्म में प्रथम श्रविकार सुनीति का । केवल
कुतिया की भाँति श्रापके श्रव से पेट पालने का मेरा श्रविकार
है। श्राप श्रपनी धर्मपत्नी को लेकर रहें, मैं जाती हूँ।" यह कह
कर सुक्वि उठ खड़ी हुई।

राजा ने बलपूर्वक उसका हाथ पकड़ कर फिर अपने पास

पवित्रवा ।

32

विठाया और वहे प्यार से उसकी पीठ पर हाथ रखकर कहा—
प्यारी! में सब कहता हूँ । जुम मेरी आंखों की पुतली और घर
की सोमा ही?—राजा जुछ और कहना चाहते थे, परन्यु सुरुषि
ने वीच हो में रोक कर कहा—"शोमा की बात खाप सन कहते
हैं, इसपर में जुरा भी शविश्वास नहीं करती। श्रापने सुमक्ते अच्छे
सूच्छवन्तों से सजाकर मिट्टी की मूर्ति वनाकर अपने घर की सोमा
बढ़ाने के लिए रख छोड़ा है। विद्यार है खीजन्म की! विद्यार है
उठप की रूपस्ट्रहा को!"
जनानपह—"सुम बच्चे क्यों खेद करती हो ?" में अमी

उत्तानपार—"तुम ब्ययं क्यां खंद करती हो ?" में अभी सुनीति के पास ख़दर भेज कर बुजाता हूँ । में उसके हृदय को भंजीमीति जानता हूँ । वह तुम पर जितना स्नेह रखती है, उससे यदि उसे किसी तरह माजूम होगा कि वही तुम्हारे सुखं का कांटा हो रही है, वहीं दुःख का कारख है, तो अवश्य वह तुम्हारे दुःख का परिशोध करेगी।"

को परिशाध करेगी।"

राजा ने एक दासी से कहा—"यड़ी रानी से जाकर कहा कि
वह एक बार यहाँ ब्राकर सुम्मसे भेट करे।"

दासी सुनीति को खुलाने गई। वह सुकचि ब्राप ही ब्राप ईच्यी

दासी सुनीति को खुलाने गई। तब सुरुचि आप ही आप ईच्यां भरे धीमे स्वर में बेलगे लगी—"वड़ी रानी! बड़ी रानी! सब कोई कहते हैं बड़ी रानी! वह बड़ी रानी और में छोटो रानी! वह बड़ी काहे से ? वह राजा की बेटी है तो क्या में नहीं हूँ ? वह राजा को ब्याही है तो क्या में चनको ब्याही नहीं हूँ ? वह सुन्दरी है,

का ज्याहा है तो क्या में उनको व्याही नहीं हूँ ? वह सुन्दरी है, क्या में कुरुपा हूँ ? तो वह वड़ी में छोटी क्योंकर ? यदि मैं मधुरा के महाराज की राजकुमारी, हूँगी तो दिखा टूँगी कि वड़ी रानी का नाम मिटवा है या नहीं । सब लोग आ़्रांख पसार कर देखेंगे कि एक राजा और एक रानी के सिवा दूसरा कोई न रहेगा। छेड़ी हूँ या बड़ी, मैं ही एक रहूँगी।"

हसी समय राजा की आजा सुनकर सुनीवि वहां आई। वह इन्न ही देर पहले भगवान की सन्त्या-आराजी देखकर आई ही। इसिल्य वह जिस चेत्र में रंगेन करने की गई थी वसी वेत्र में राजा के पास आई। वह रेसमी सालं पहने थी, बलाट में बन्दन समाये श्री, कण्ठ में मगवान के प्रसाद सरस्प फूल की माला थी, सुन्त की श्रोमा खिल हुए गुलाब के फूल की सी थी, चेहरे पर शान्ति आई श्री, देखने से मालूम होता था जैसे वह साचान कोई देवी की मृति हो । युवावश्या का चपल सैन्दर्य दूर होकर प्रीड़ अवस्था की गम्भीर शोमा वसने सर्वांकु में विकासित हो रही वी। उत्तात्माद ने एक बार सुनीति के लोह और करना मरे, सरखता के आधार-स्वरूप मुख्यण्डल की और देखा। वक्तने नयनों में श्रीस् मर आये। ये सुनीति से खुळ कह न सके।

इयर सुनीवि ने केटियों के भीवर प्रवेश करते हो देखा, सुनीव के बाल खुले हैं, शरीर में एक भी आध्युष्य नहीं, भीवा कपड़ा पहिरे हैं। उन्ने देखकर सुनीति को वड़ा आध्ये हुआ। वह विकास न कर भट सुनीव के पास जा बैठी और उसके क्लिरे हुए वालों को समेट कर बोड़ी—"कहन, यह क्या ? सुम्हारा आज पेसा भेस क्यों ? देखती हूँ, न सुम्हारे वाल वैचे हैं, न सिर में सिन्द्र है, शरीर में पूल सिट्टी तुनी हैं। रोते रोते हुम्हारी दोनों आले 'सुन गई हैं। क्या हुआ है ? मसुरा से कोई जनिट संवाद तो नहीं आया है।"

Ķ١

मुरुचि ने मुनीति के हाथों से अपनी विख्रुलित केशराशि छुड़ा कर कर्कश खर में कहा—''सुनीति ! तुम सुभी न छुत्री ।''

सुनीति श्राधर्य के साथ वेत्ती—"क्यों वहन ! दुम तो कमी मेरा नाम न लेतो थों, वरावर जीजी कहती थीं। आज

कमी मेरा नाम न जेती थीं, बरावर जीजी कहती थीं। ध्राज तुम्हें क्या हुआ है ? क्या सुक्ष पर नाराज तो नहीं हो ?" सुक्षिय के उत्तर देने के पूर्व हो राजा उत्तानपाद ने कहा---

, जुड़ीय के उत्तर देन के पूत हो राजा ज्यानगर ने कहा — "सुरुचि ब्राज तुम्हारे ब्रीर मेरे ऊपर बहुत रुष्ट हैं। उसकी यह धारणा है कि मैं उसकी ब्रयेचा तुमको ष्रायिक चाहता हूँ। वह कहती हैं कि मैंने ही तुमको यह सवैतिम मोती-माला दी हैं।"

सुनीवि— "यही वात है ! इसके लिए इतना मान क्यों ? यह लो बहन ! जब तुम यहां न आई याँ, तमी सर्नीय महाराज ने यह हार मुफ्को दिया था । इस हार में जैसा अधिकार मेरा है बैसा ही तुम्हारा मी । आज से यह तुम्हारा हुआ ।" यह कह कर सुनीवि ने तुरन्त अपने कण्ठ से माला निकाल कर सुरुचि को पहना दी । दीएक के प्रकारा में हार अपनी अपूर्व जमक चारों ओर फैलाने लगा, किन्तु सुरुचि ने मद उसे गले से निकाल दूर फेंक दिया; और रूखे स्वर में नेली— "सुनीवि, में मधुराधीश की राजकुमारी हूँ ! मिस्समीगन नहीं हूँ जो तुम्हारा दान लूँगी । तुम अपनी माला अपने पास रहने दे। ।"

राजा श्रीर सुनीति दोनों ही सुरुचि का व्यवहार देख कर श्रवाक हो रहे। कुछ देर के बाद राजा ने कहा—"क्या करने से सुन्हें सन्तेष होगा ? किस तरह दुन्हारा क्रोघ शान्त होगा ? कही, हम दोनों वही करें।" सुरुचि ने कहा—''महाराज ! सुनिए, इस महल में हम दोनों अब एक साथ नहीं रह सकतों। में जितने दिन वालिका धी अपना भला तुरा कुछ न जानती थी, उतने दिन सुनीति ने जो कुछ मुभी दिया मैं उसी में तुम रही। किन्तु मैंने अब अपने अधि-कार को जाना है, जो मेरा प्राप्य है वह सुभी मिलना चाहिए।''

सुनीति—''यह तो अच्छी बात है। इसके लिए तुम इतनी असन्तुष्ट क्यों हो ? जो तुम्हारा प्राप्य है वह तो तुमको मिलेहोगा, इसके अविरिक्त मेरी निज की जो वस्तु है वह भी में तुमको दे सकती हूँ।"

राजा ने ठण्डी साँस भरी। मानो उनके हृदय का दोम्स कुछ इलका हुआ। उन्होंने कहा—''सुरुचि! देखेा, वड़ी रानी तुमको कितना प्यार करती है। तुमको उस पर रोप न करना चाहिए।''

सुरुचि---''श्राप स्त्री का हृदय क्या जाने । स्त्री और सव बस्तुओं का भाग दे सकती है किन्तु अपनी इच्छा से वह कभी स्त्रामी के प्रेम का भाग नहीं दे सकती । वस्त्र, अलङ्कार और सारी सम्पत्ति पर सुनीति ही का अधिकार रहे, मैं केवल अपने स्त्रामी पर एकाधिकार चाहती हूँ।"

कुछ देर के लिए सुनीति के चेहरे पर कालापन छा गया। किन्तु उसने चित्त के वेग को रोक कर अपने स्वामाविक सपुर स्वर में कहा—''वहन, तुम्हारे आने के पूर्व मेंने वहुत दिनों तक एका-किनी होकर सामी की सेवा की है। तुम भी तो जनकी धर्मपत्नी हो, हसलिए मैंने जो सुख उनसे पाया है वह सुर्ख पाने की तुम

द्वह पवित्रवा ।
भी अधिकारियों हो । अब दुम अकोली उनकी सेवा करो । मैं दुम
दोनों की सुखी देख कर सुखी हूँगी।"
सुक्षिय ने सुतीवि की बाव का कुछ वक्तर न देकर राजा से
कहा---"महाराज, मैं आपसे सच कहती हूँ। इस महल में

अब हम दोनों का रहना कदापि नहीं हो सकता! आप चिकत न हों। में किस लिए यह कह रही हूँ सो सुनिए। आपकी पहली की में जब पुत्रोत्पित न हुई तब आप ने मेरे पिता से सुन्ने मॉग कर मेरे साथ ज्याह किया था। उनका दीहिन (नाती) भविष्यत में राज्याधिकारी होगा, इसी आशा से उन्होंने आपके हाथ सुन्ने

सींप दिया चा । फिन्सु अब यदि आघ हम दोनों को साख समान भाव से संसार-धर्म का निर्वाह करेंगे तो मेरे गर्म से जो पुत्र उत्पत्र होगा उसे राज्य गिछने को आगा बहुत ही कम रहेगी। उस दिन महर्षि वैधायन ने हम दोनों को देखकर "शुवां पुत्रवसी भवताम्" कह कर आशीर्वाद दिया था। महर्षि का वाक्य कभी विफल नईंगे हो सकता। इसलिए सेरा पुत्र पहले उत्पन्न हो या पीछे। सुनीति के पुत्र होने से फितने ही प्रजागाश घड़ी रांगों का पुत्र जानकर

हो सकता। इसिंतए सेरा पुत्र पहले उत्पन्न हो या पीछे। सुनाति के पुत्र 'होने से कितने ही प्रजागण वही रागी का पुत्र जानकर प्रवर्ध ही उसका पन्न लेंगे। उस श्रवस्था में मेरा चेटा निष्कण्टक राज्य न भीग सकेगा।" सुनीति—"वहन, यदि यही तुम्हारे उद्वेग का काव्य हो ते। हुम इसके लिए चिन्ता न करे। यदि भगवान मेरे बेटा हेंगे ते। हुम इसके लिए चिन्ता न करे। यदि भगवान मेरे बेटा हेंगे ते।

पह राजपद से भी श्रेष्ठ है मैं इसे बड़ी पद प्राप्त करने की

शिक्षा दूँगी।"

सुरुचि---''राजपद से भी श्रेष्ठ पद ! हुम उसे क्या शिचा दोगी ?"

सुनीति—''उसे तुम न समफ सकोगी।'' यह बात सुक्ति के मर्म में जा लगी। वह चुटीली नागिन की माँति कोघ से गरज कर वोली—''सुनीति! तुम सुनो, महाराज! ब्राप भी सुन, पुत्र ही के लिए पत्नी प्रयोजनीय है। लिखा भी है—''

''पुत्रप्रयोजना भार्या''

किन्तु सुनीति के द्वारा जब आपका वह प्रयोजन सिद्ध न हुआ तब आपने मेरे साथ व्याह किया। इसिलए आप के महल में दो कियों के रहने की आवश्यकता नहीं। चाहे आप सुभको विदा करके सुनीति को लेकर रहें, चाहे उसे विदा करके मेरा जो हक हैं वह सुभको दें।

सुनीति की आँखों में आँसू भर आये। उसने करुणा भरे खर में कहा—''वहन, क्यों ऐसी वात वोलती हो १ आओ, हम तुम दोनों मिल कर खामी की सेवा करके जीवन सार्थक करें। मैं राज्य, धन, सम्पत्ति आदि कुछ नहीं चाहती। दिन में एक बार पति के चरण की पूजा करूँगी, यही एकमात्र मेरी वासना है।"

सुनीति राजा की स्रोर देख कर बोली—''महाराज ! क्या स्रापकी भी यही राय होती है ?"

राजा के सर्वाङ्ग में माना सैकड़ों विच्छू एक साथ डंक मार

पतित्रता । रहे थे। छन्होंने सुरुषि की ग्रीर कातरहिए से देखा, उसकी

ब्रॉख से अपने श्राम की चिनगारियों सड़ रही थीं । वे करूप **पर सुनीति से वेाले—"व्यारी ! में** क्या फहूँ ? जिसमें मेरी प्राध-रचा हो से करो।"

सुनीति राजा के मन का भाव समफ गई। वह हाब जाढ़ राता की प्रमास करके उस कोठरी से वाहर हो गई। इसने सट

अपने अङ्ग का मृष्ण जतार कर अपनी एक विश्वासपात्री दासी को दिया ग्रीर भ्राप श्रकेली चुपचाप उस श्रॅथेरी रात में न सालून कियर चल दी। कुळ ही देर बाद सहस्त के भीतर कोलाइस मचा कि बड़ी रानी कहाँ गई उसका पता नहीं । सबेरे एक पहरे-

दार ने आकर सूचना दी कि जिस गुप्त द्वार से सहल की क्षियी यमुना में सान करने जाती हैं, वह द्वार रात की खुला था। यमुना नदी के किनारे महावर से ऋड़ित पर का चिह्न प्रव तक वर्तभान है। यह सुनकर पुरवासियों ने श्रतुमान किया, वड़ी रानी विपाह से यमुनाजल में हुवकर मर गई। इस शोकसंघाद वे

राजा को ममान्तिक कर दिया। वै सुनीति के वियोग से बहुत हुसी हुए। परन्तु जिल्ल ही दिनों में राजा के शोकाशु के साथ साथ सुनीवि का नाम भी हुप्त हो चला।

हुर तक फैला हुआ था। इस जङ्गल के भीतर महर्षि व्यत्रिका पवित्र साध्यम था। वहाँ कितने ही तपत्नी ऋषि सपत्नीक निवास

करते थे। वहाँ हिंसान्ह्रेप का नाम न या, भेग-विलास का विह माञ न था। सब लोग परसर हिल-मिल कर वहें धानन्द से

समय विताते थे। आश्रम के पास ही एक फोंपडा था। देखने से वह श्रीर कुटोरों की श्रपेक्षा नया मालूम होता था। उसके चारों तरफ़ तुलसी के बूच लगे थे। एक तपस्तिनी श्रकेली उस क्रटिया में रहती थी। स्वरूप और व्यवहार में अन्यान्य तपस्वितियों से उसकी कुछ विभिन्नता न थी। उसका शरीर तपाये हुए सोने की भांति सुन्दर था। सभी ग्रङ्ग सुडौल थे। उसके चेहरे पर एक ऐसा प्रभावशाली शान्तभाव छाया या जिसे देखने से उसके सामने सिर नवाने की इच्छा होती थी। वह गेरुवा कपड़ा पहने थी। गले में तुलसी की माला और सिर में गोपीचन्दन का तिलक शोभा दे रहा था। अधिक समय वह ध्यान में निमन्न रहती थी। कभी कभी कुटी से बाहर हो कर वह पेड़ के गिरे पत्ते और फल फूल संब्रह कर ले आती थी। वह अत्यन्त दयावती थीः। आश्रम में जब कसी कोई वीमार होता तव वहीं उसकी सेवा करती श्रीर शोकार्त की सान्त्वना देती थी। ऋषिगण घेांसले से गिरे हुए पची के बच्चे श्रीर माराहीन मृगञ्जीने के पालन का भार उसी के हाथ सींपते थे। उसकी क़टी में सदा हरिनाम का कीर्तन होताथा। जब वह भगवान का गुण गाते गाते यक जाती थी तब उसके पालित श्रकसारिकागण "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण" उच्चारण कर उस स्थान को पवित्र करते थे। उसके ऊपर श्राश्रम वासियों की वडी भक्ति थो। महर्षि ने उसका नाम आश्रमलंस्मी रख दिया था। उसी नाम से वह सबों में परिचित थी। तपोवन में किसी का विशेष परिचय पूछना मना था, इससे कोई कभी उसका परिचय न पूछता था; क्रेवल अत्रि सुनि उसकां पूरा परिचय जानते थे।

एक दिन अप्रिहोत्र करके अति मुनि आश्रमल्हमी की कुटी में श्राये । उनकी आते देख आश्रमल्हमी ने मिक्तपूर्वक उनके पैर पलार वैठने की श्रासन दिया । पीछे उन्हें साप्टाङ्ग प्रखाम कर वह अपने श्रासन पर जा वैठी । कुराल-प्रश्न पूछने के श्रमन्तर मुनि ने कहा—''येटी ! क्या में तुम्हारा मुँह कभी प्रसन्न न देखूँगा ? तुम्हें जब देखता हूँ तमी तुमको उदास पाता हूँ । तुम्हारी , आंखों में श्रांस् मरे ही रहते हैं । वेटी ! तुम इतना क्यों रेती हो ?" आश्रमल्हमी—''गुरुदेव ! मैं न रोऊँगी तो कीन रोबेगा ?

न रोने से मेरे पाप का प्रायश्चित्त न होगा।"

श्रित्र—"मैंने कई बार तुमसे कहा है, तुम निष्पापा हो । तुम . श्रपने को क्यों पापिनी समभती हो १ धर्म का श्रिममान जैसे निन्दा है वैसे हो श्रात्मापमान भी निन्दित है।"

श्राश्रमलच्मी—''यदि में निष्पापा होती तो इतना मनस्ताप क्यों होता ?''

श्रात्र—''बेटी ! मनसाप सर्वत्र पाप ही का स्चक नहीं होता । स्खावशेष से कभी कभी उसका फल उलटा भी होता है । देखो, स्वैदेव प्रखर उत्ताप से पृथ्वी को जलाते हैं, तो क्या यह पृथ्वी की पापशान्ति के लिए ? नहीं, उसको फलप्रसिवनी करने ही के लिए । भगवान जो कभी कभी हम लोगों को हु:ख से दग्ध करते हैं, वह केवल हम लोगों को तथ्ड हेने हो के लिए नहीं, हम लोगों के द्वारा कोई विशेष कार्यसाधन के लिए भी । सुम्मे पूरा विश्वास है कि तुम्हारा यह छेश तुम्हारे मङ्गल के लिए हैं। खामी से श्रलग होकर इतने दिन तुम जगल्लामी की जैसी मिक्त कर सकी हो,

इसके पूर्व कभी न कर सकी होगी। आंसुओं के अविरल प्रवाह से तुम्हारी मलिनता धोई जाकर तुम्हारा स्वच्छ हृदय अव जगत्पति परमेश्वर के विहार करने योग्य हो गया। तुम्हारा छेश संसार को मङ्गलप्रद होगा। मैं अपनी दिव्य दृष्टि से देख रहा हूँ, तुम्हारे गर्भ से एक ऐसा महात्मा जन्म लेगा जो संसार में भक्तनूबामिष के नाम से ख्यात होगा और जो अध्रुव है, उसे छोड़ कर ध्रुव का शह्य करेगा।

भ्राश्रमलच्मी—''ग्रापका वाक्य कमी विफल न होगा। किन्तु कहाँ में, कहाँ सेरे प्रभु ? क्या श्रव उनके चरणों का दर्शन मुक्ते आप्त होगा ?''

श्रित्र—''वेटी, होगा, अवश्य होगा। विधाता के चरित्र की . कौन जान सकता है ? वह सम्भव की असम्भव श्रीर असम्भव की सम्भव कर दिखाता है। समय अधिक हुआ। मैं अब जाता हूँ।"

इस प्रकार ब्राश्रमलक्त्मी को समक्ता बुक्ता कर ब्रीर उसे ब्राशीर्वाद देकर ब्रित्र मुनि ब्रपने ब्राश्रम की चले गये।

क्रमशः सूर्यं मध्य-आकाशवर्षी हुए । दिन ढळ चळा । सांक हुई । अन्धकार ने धीरे धीरे वनसूमि पर अपना अधिकार जमाया । सन्ध्या होने के साथ साथ आकाश में काली घटा घिर आई । बढ़े वेग से हवा वहने लगी । क्रमशः हवा ने आंधी का रूप धारण किया । बढ़े बढ़े पेढ़ जड़ से उखड़ कर दूर जा गिरे । जङ्गली जाल- घर भयमीत होकर चीत्कार करते हुए इधर उधर दीढ़ने लगे । देखते ही देखते वनसूमि ने भयङ्कर रूप धारण कर लिया । पर्चों की खड़खड़ाहट और पेड़ों के परस्पर संघर्षण से अत्यन्त विकट शब्द

होने लगा। कुछ ही देर वाद मूसलधार पानी वरसने लगा। किसका सामर्थ्य था जो उस भड़ी में वाहर ठंहर सके ? आश्रमवासियों ने अपनो श्रपनी कुटी में प्रवेश किया और भड़ी बन्द होने की वाट देखने लगे। पहर से उपर हो गया तो भी भड़ी बन्द न हुई। आश्रमलस्मी द्वार बन्द करके अपनी कुटी में वैठी थी। प्रवल वायु के भोजे से एक एक बार उसका घर हिल जाता था, साथ ही उसका हृदय कॉप उठवा था। इसी समय वाहर से कोई उसके द्वार में धका मार कर बोला—"भीतर कीन है ? प्राख जा रहा है, जल्दी द्वार खोली।"

श्राश्रमलुक्सी को प्रथम वार श्रम हुआ। उसने सममा, वायु की सनसनाहट ही श्रार्तनाद का रूप धारण कर कान में प्रविष्ट हुई है। किन्तु वही शब्द स्पष्ट रूप से जब दो तीन वार उसके कानों में पढ़ा तब उसने भट पट द्वार खोल दिया। दीपक का प्रकाश एकाएक दोनों के ग्रुँह पर पढ़ा। दोनों परस्पर एक दूसरे को देख कर चैंक उठे।

भ्रागन्तुक ने कहा—''श्रय्ँ ! वड़ी रानी ?'' भ्राश्रमत्त्रमी—''श्राप महाराज !''

दूसरी वात वोजने के पूर्व ही दोनों मूर्जित हो भूमि पर गिर पड़े। क्या यह भी कहना होगा कि यह आश्रमजन्मी पतिप्राचा सुनीति बी और यह आगन्सुक राजा उत्तानपाद थे ? सुनीति राजभवन साग कर यसुना के निकटवर्ती जङ्गुल के भीतर प्रवेश कर दैवयोग से अत्रि सुनि के आश्रम में आ पहुँची । सुनि ने उसका परिचय पाकर और उसकी सुशीलता से सुग्ध होकर बेटी की माँति उसे प्यार कर अपने आश्रम में रहने की जगह दी। वहाँ सुनि

श्रीर मुनिपत्नियों के सङ्ग रहने श्रीर उनके साथ बराबर धर्म-विष-यक वार्तालाप करने में सुनीति का समय वड़े सुख से व्यतीत होता था। जनसमाज में रह कर जो ध्यान श्रीर धारणा दु:साध्य होती है, वह उस शान्त तपावन में सुनीति के लिए सुखसाध्य हुई। जैसे खेत सूर्य के उत्ताप से पहले दग्ध होता है, पीछे हल से जाता है, पीछे वर्षा के पानी से ठंडा होकर अन्न उपजाता है, उसी तरह सुनीति सीत के दुर्व्यवहार से पहले दग्ध होकर पति के उपेचाभाव से विदीर्ण-हृदया हुई, पीछे अत्रि मुनि के वात्सल्य श्रीर सदुपदेश से ठंडों होकर ध्रुव के सदृश हरिमक्त पुत्र उत्पन्न करने की अधिका-रिग्री हुई। दैवयोग से उसे इसी कुटी में पतिपदसेवा का सुयोग मिला। राजा उत्तानपाद आखेट करने आये थे। वे मही में रास्ता भूल कर भटकते भटकते सुनीति की कुटी में उपस्थित हुए। श्रित्र-मुनि ने यथार्थ ही कहा था कि "विधाता के चरित्र की कीन जान सकता है। वह ग्रसम्भव को सम्भव कर देता है।"

भज्डी वन्द होने के साथ साथ आश्रमनासियों ने जाना कि आश्रमल्हमी की कुटी में एक अतिथि आया है। सुन कर वे सब अतिथि के उपयुक्त आदर-सरकार की आयोजना करने लगे। इस अतिथि के साथ आश्रमल्हमी का क्या सम्बन्ध है, यह बात थोड़ी ही देर में सबको विदित हो गई। यह ग्रुम संवाद पाकर मुनि-पिलयों के आनन्द की सीमा न रही। वे सब अपने अपने घर से खाने पीने की उत्तमोत्तम वस्तु लेकर आश्रमल्हमी के घर उपिश्वत हुई। कोई मक्खन, कोई दही, कोई मधु, कोई मधुर फल मूल लाई। कोई मुनल्वत, कोई दही, कोई मचु, कोई मधुर फल मूल लाई। कोई मुनल्वत कुल और माला, कोई चन्दन ले आई। सुनीित ने

पति की भीगे ग्रीर जाड़े से कांपते हुए देख कर उनके कपड़े बदल-वाये भ्रीर श्राम तपा कर उन्हें खध किया । पीछे मुनिपन्नियों की दी हुई सामग्री परास कर उन्हें भोजन कराया। ऐसी सुखाद मधुर वस्तु उन्होंने अपनी जिन्दगी भर में कभी न खाई थी और वे भोजन करके कभी इस प्रकार राप्त भी न हुए थे। दु:खिनी सुनीति इस जङ्गल में राजा के योग्य कोमल प्राय्या कहाँ पाती ? उसने राजा के लिए कटी के भीतर एक ग्रेगर ग्रपना क़शासन विछा दिया। राजा उसी पर सो रहे । सगर हो या तपेवन, खियों का खभाव सर्वत्र ही समान होता है। ग्रत्रि मुनि की पत्नी ने खयं त्राकर श्राश्रमलक्मी का कीश बांध दिया। श्रपने श्रांचल से उसका मुँह पोंछ कर उसके ललाट में कस्तूरी का तिलक और सिर में सिन्द्र कर दिया । मेघ हट जाने पर पूर्णचन्द्र जैसा सुन्दर देख पड्ता है, उससे भी बढ़कर सुनीति का मुँह सुन्दर दिखाई देने लगा। ''बेटी लच्मी ! जाओ, अब पतिरूपी नारायण की सेवा करके अतार्थ हो।" यह कहकर अजिपत्नी अपने घर चली गई'।

सुनीवि झटी का द्वार बन्द करके पित के पास वैठकर उनका पैर दावने लगी । उस समय उन दोनों में क्या क्या वातें हुई, राजा ने किस सरह अपना दोष क्षीकार कर शत सहस्रवार ज्या की प्रार्थना की, सुनीवि ने किस प्रकार पविज्ञता के योग्य प्रेम से उनका संकोच दूर किया, यह सब कहने की आवश्यकता नहीं, सहृद्य पाठक पाठिकागश ख्यं अनुसन कर हों। सुनीवि ने पित-सेवा से झताथ होकर पाठक पाठक पाठक पाठक सा उन्हां से उन्हां से खता से इताथ हो तरह से समका सुकाक एवनी राजधानी को चलो गये।

सुनोति इस प्रकार अत्रि सुनि के आश्रम में रहकर सुख-पूर्वक समय विताने लगी । इधर सुरुचि सीत की इटा कर एकाधीश्वरी हुई । धन, जन, सम्पत्ति, स्वामी सव पर उसका एकाधिकार हुआ । उसके पैर का कांटा और आंख का कंकड दूर हुआ । उसने सोचा कि अब वह निष्कण्टक सुख भोगेगी। किन्तु यह बात न हुई। उसका मन अशान्ति से भर गया। उसकी श्रशान्ति का प्रथम कारण लोकनिन्दा था, उसके डर से उसके, मुँइ पर कोई कुछ न बोलताया, परन्तुवह जानती थी कि परोच्च में सब लोग उसकी निन्दा करते हैं। जब से बड़ी रानी खोई गई है सब से सब लोग इसका दोष छोटो रानी के माथे मढ़ते हैं। सुरुचि की अशान्ति का दूसरा कारण यह भी था कि जिनको लेकर वह सुख भीगती, वेही सुखी न थे। पतिसेवा में यद्यपि वह कोई बृटि न करती थी तथापि पवि की प्रसन्न करना उसकी शक्ति से बाहर की बात थी। वह अपने हाथ से राजा के लिए नाना प्रकार के सुस्वाद पकवान बनाती थी । अपने हाथ से उनका पत्नङ्ग विछाती थी, पर तो भी देखती थी, वे न रुचिपूर्वक भोजन करते हैं, श्रीर न उन्हें अच्छी नोंद आती है। राजकार्य में भी उनका जी नहीं लगता था। वे कभी चैंक डठते थे, कभी विना कारख लम्बी साँस होते थे, कभी एकान्त में चुपचाप बैठकर आंसू बहाते थे। सुनीति के अन्तर्धान होने के पीछे उसका शयनगृह, उसकी शय्या, उसके भूषगा-वसन प्रादि सब वस्तुएँ सुरुचि की हुई । परन्तु सुनीति की कोई वस्तु उसको विशेष ज्ञानन्द न देसकी । कारण यह कि सुनीति की कोई वस्तु देखते ही राजा का चेहरा उदास हा जाता

था । वे सुनीति के पलङ्ग पर स्रोने की श्रपेत्ता धरती पर सोकर विशेष सुख पाते थे। सुरुचि इसका कारण राजा से न पूछ सकती थो । उनकी उदासी का जो कुछ कारण वह श्रतुमान करती घो वह उसके हृदय को विदीर्ध कर डालता या । विशेष कर जिस दिन राजा आखेट से लीट कर घर आये, उस दिन से उनके मन का भाव ग्रीर भी वदल गया । सुरुचि के ऊपर राजा . के ब्रनुराग श्रीर त्रादर की कमी न थी, पर तो भी सुरुचि के मन को सन्तोप नहीं मिलता या। उसके सन्तोप में एक न एक वित्र म्रा पड़ता घा। वह सोचती घी, जय सुनीति घर में घी तव इसकी श्रमेचा वह श्रधिक सुखी थी । राजा रूपर के मन से उसको बहुत चाहते घे, परन्तु स्रन्तःकरण उनका किसी श्रीर ही दुःख से दुखी रहता था । इससे सुरुचि के मन में वरावर उदासी बनी रहती थी । इसी समय सुरुचि के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्रोत्पत्ति से सौत के ऊपर पूरा जयलाभ हुत्रा जान कर श्रीर पुत्र के लाड़ प्यार में भूल कर सुरुचि के मन का उद्देग कुछ दूर हुआ।

इघर तपावन में सुनीति भी गर्भिणी हुई घी। गर्भ का समय
पूर्ण होने पर उसने एक बहुत सुन्दर पुत्र प्रसव किया। अत्रि सुनि
ने बेदिविधि से बालक का जातकर्म करके उसका नाम धुव रक्खा
और कहा कि "यह बालक संसार में जो एक मात्र धुव है उसका
लाभ करेगा।" धुव ग्रुष्ट पच के चन्द्रमा की भांति दिन दिन बढ़
कर माता के नयन और मन को हाम करने लगा। उसके काले
बुधराले बाल, कमल से सुन्दर नेत्र, नये निकले हुए दो दांत देख
देख कर सुनीति के सब दुःख दूर हो गये। धुव कमशः भूमि पर

बैठने, घुटनेां को बल चलने, खड़े होने, कुछ कुछ चलने ग्रीर देौड़ने में समर्थ हुआ। जब वह श्रपराह को मुनि-बालकों के साथ खेल कूद कर सारे बदन में मिट्टी लगाये घर आता था तब सुनीति र्यांचल से उसके शरीर की धूल भाड़ कर उसे छाती से लगाती श्रीर श्रपने हृदय को ठंडा करती थी। महर्षि ग्रत्रि की बड़ी लालसा लगी थी कि वे आश्रमलक्सी के सुँह पर हँसी देखें, उनका यह मनेारथ पूर्ण हुआ। ध्रुव को देखते ही सुनीति का चेहरा खिल जाता था। उसके मुँह पर हँसी आ जाती थी। म्रिति सुनि कभी कभी भ्राङ् से देखते थे, "सुनीति ध्रुव की ग्रीर श्रीर घ्रव सुनीति की श्रीर स्तेहभरी दृष्टि से देख रहे हैं। दोनीं के होठों पर मीठी मुसकुराहट छाई है।" सुनीति करताली देकर ध्रव को नाचना सिखलाती है। अत्रि मुनि स्वयं गृही थे, इसलिए पिता जिस तरह पुत्रवती बेटी को सन्तान के लालन-पालन में लगी देख कर सुखी होते हैं, वे भी उसी तरह सुनीति को ध्रुव का लाड़-प्यार करते देख कर सुखी होते थे। उनकी आँखें में श्रानन्दाशु उमड़ श्राते[.]थे।

ध्रुव क्रमशः किशोर अवस्था में प्राप्त हुआ। उम्र बढ़ने के साथ साथ उसके शरीर का सौन्दर्श भी बढ़ने लगा। उसकी तपाये हुए सोने के सहश देह की गोराई, अङ्ग-प्रतङ्ग का सुन्दर गठन, मीठी मुसकुराहट जो देखता बही मोहित होता था। सर्वोपिर ध्रुव का स्वभाव ऐसा कोमल था कि जङ्गल के पशु-पत्ती भी उसका साथ छोड़ना नहीं चाहते थे। ध्रुव ने माता की गोद में बैठ कर माता से भगवान का गुण गाना सीला था। साँक की ध्रुव आश्रम के मुनि-बालकों को साथ ले अपनी कुटी की अँगनाई में उसङ्ग भरे मन से हरिकीर्तन करता था। हाथ उठा कर और नाच नाच कर सब लड़के गाते थे—

भैया ! एक घार सब मिलकर आओ !
ध्रुव गाता था—प्रेम माव से पुलकित होकर,
प्रभुवर का गुरू गाझो ।
वालक गरू—आओ जङ्गल के पशुपची,
इरि से नेह लगाओ !"
ध्रुव—जी सुख है हरिनाम भजन में;
सो सुख सब मिल पाओ !"

माता का उपदेश यही है, हरि के भक्त कहाओं।"

यद्यपि इस सङ्गीत में तान, लय, राग-रागिनी आदि का कुछ भी समावेश न था, तथापि जो सुनता वही मोहित होता था। वहें वहें वृद्ध अपिश्वर भी अपने निल्तानियमित पूजा-पाठ और होम भूल कर वह अपूर्व हिस्तितेन सुनते शे और सुन कर ईश्वर के प्रेम में मात्र होकर आनन्दाश्र वहाते थे। कण्ट में तुलसी की माला, ललाट में गोपीचन्दन का तिलक, मुख में हिरताम, ऐसे परम भक ध्रुव को देख कर जान पड़ता था जैसे परमेश्वर का प्रेम मूर्तिमान होकर भूमण्डल में अवतीर्थ हुआ हो। ध्रुव का मिक्साव देख कर मुनिगण कहा करते थे, "ऐसी धर्मशीला माता के पेट से ऐसा पुत्र उरस्त्र होगा, इसमें आवर्ष क्या है ?"

मुनि के वालकगण जब तब कोई वात निकल श्राने पर श्रपने

अपने पिता का यरा गाते थे। किन्तु ध्रुव ने कभी अपने पिता को न देखा था; इस लिए वह अपने पिता को विषय में कुछ न बेलता था। एक दिन बालकों ने ध्रुव से पूछा, "कड़ो भैवा, इस लोगों के तो पिता हैं, क्या पुम्हारे पिता नहीं हैं ? इस लोगों ने तो कभी उनको न देखा ?" ध्रुव ने ग्रुँ इ उदास किये मां से आकर पूछा— माता, "मेरे पिता कहीं हैं ?"

यह मुन कर भुनीति चिकत हो बोली --- अग़ज तुमने यह क्यों पुळा ?"

ध्रुव—सुनियों के खड़के सब ब्राज सुमासे कहते थे, इमारे सभी के पिता हैं, क्या तुम्हारे पिता नहीं हैं ? मां! क्या सचसुच मेरे पिता नहीं हैं ?"

सुनीति—"ऐसी अञ्चभः वात न बोलो । तुम्हारे पिता क्यों नहीं हैं ? वे राजराजेश्वर हैं ।"

धुव-"माँ ! मैंने तो उन्हें कभी देखा नहीं। वे हम लोगों

के पास क्यों नहीं रहते ?" सुनीति—"यह मेरी अभाग्यता हैं ! वे अपनी राजधानी में

सुनाति—''यह मेरी श्रमान्यता हैं! वे अपनी राजधानी में रहते हैं।''

ध्रुव—"उनकी राजधानी कहाँ हैं ?"

सुनीति—"यहाँ से कुछ दूर यसना के किनारे की उपवादिका में उनका राजमवन है।"

प्रुव— म एक बार वहा जाकर प्यता की देशन करना चाहता हूँ।"

सुनीति ने जन्दी सांस जेकर कहा—"राजधानी यहाँ से

बहुत दूर है, तुम बालक हो। इतना दूर प्रकेले न जा सकेले। यदि परमेश्वर दया करेंगे तो तुम्हारे पिता ही तुमकी देखने आवेंगे।

से अपने पिता का परिचय दिया। वालकों ने आपस में सलाह करके भूव से कहा—''चलो, हम लोग एक वार राजधानी जाकर तुम्हारे पिता को देख आवे'।"

धूव ने इस बात का कुछ उत्तर न देकर श्रपने साथी वालकों

ध्रुव ने कहा—"मेरी भी यही इच्छा है।" दूसरे दिन सवेरे ऋपिवासकों ने ध्रुव को साथ लेकर राजधानी

की यात्रा को। एक तो रास्ता किसी का देखा नहीं, दूसरे दूर वक जाने का अभ्यास नहीं। इस कारण वे सब धूमते फिरते ठीक देप-इर को राजधानी में उपस्थित हुए। भूख-प्यास से सब व्याक्रल घे। उन्होंने समक्षा घा, राजधानी आश्रम के सहश ही कुछ विलचण

जगह होगी, किन्तु वहाँ ब्राकर वे सब बढ़े वड़े ऊँचे कोठी, हाघी-घोड़ों ब्रीर अल-शलघारियों से भरा हुआ स्थान देखकर टर गये। डन वालकों का भेप देखकर नगर-निवासियों ने तुरन्त पहचान

लिया कि ये लोग सुनिवालक हैं। इसलिए किसी ने भ्रादरपूर्वक उन वालकों को राज-भवन

दिखला दिया। श्रमेक प्रकोष्ठ युक्त, पर्वताकार, विशालभवन देख कर वालकों के श्राश्चर्य की सीमा न रही। पहरेदार फ़ीजी पेशाक पहने हाथ में नंगी तलवार लिये सदर फाटक पर पहरा दे रहे थे।

चनका भयङ्कर रूप और अभिमान से भरा हुआ भाव देख कर और वालक पीछे हटे, किन्तु घुव ग्रागे वड़ कर बेाला, ''राजा कहाँ हैंं ? मैं उनको देखना चाहता हूँ।'' प्रहरी—"लड़के ! तुम महाराज को देखना चाहते हो ? तुम कौन हो ? कहाँ से श्राते हो ?"

ध्रुव—"में उनका बेटा हूँ। श्रुत्रि मुनि के झाश्रम से झाता हूँ।" प्रहरी—''राजकुमार तो घर पर हैं।"

ध्रुव—''प्रजा नात्र कहती है कि मैं राजा का बेटा हूँ। मैं राजा से मेंट कहुँगा।''

प्रहरी—"हम ऐसी ख़बर लेकर राजा के सम्मुख नहीं जा सकते।"

यह सुन कर उन बालकों में जो अपेचाइन उम्र में बड़ा था वह आगे वढ़ कर बीला--''हम लोग ऋषिकुमार हैं, तपेवन से आते हैं। तुम्हारे महाराज को आशोबोद देंगे, खबर दे।।"

सुनते ही द्वारपाल ने भीवर जा हाथ जोड़ कर राजा से निवेदन किया, "महाराज ! तपावन से कितने एक ऋषिकुमार श्रीमान को श्राशीर्वाद देने के लिए आये हैं। आज्ञा हो तो उन सर्वों की यहाँ लीग्रावें।"

राजा---''शीघ युला लाग्रे।''

द्वारपाल का इशारा पाकर ध्रुव श्रन्थान्य ऋषिक्रमारों के साथ राजदरबार में जा उपस्थित हुआ। इतने दिन इन बालकों ने काव्य श्रीर इतिहास में राज-समा का जो कुछ वर्णन पढ़ा था वह आज इन्हें प्रश्चच देखने में श्राया। संगममेर के चित्रित क्यों पर विशाल समामवन सुशोमित था उसके भीतर विशेष पत्थर का बना थोड़ा सा ऊँचा चवृतरा था। उस पर राजाटित स्वर्णसिंहासन के ऊपर राजा उत्तानपाद राजसी ठाट में विराजमान थे। उनके इहने और बार्चे भाग में छोटे वड़े ज़मीदार सामने मन्त्री ग्रीर सभासद लोग वैठे थे । कुछ दूर पर याचक गग्र खड़े थे । उसके श्रास पास पहरे-दार हाथ में तलवार लिये इधर उधर घूम रहे थे और हाथ के इशारे से जनकोलाहल का निवारण कर रहे थे। राजसभा गम्भीरता से भरी थी । सभारय सब लोग चुपचाप राजा की भ्रीर देख रहे थे । ऋषिक्रमारों ने वेदमन्त्र पढ़ कर राजा की त्राशीर्वाद दिया। राजा ने विनयपूर्वक सबको प्रशाम कर योग्य श्रासन पर विठाया। ऋषिकुमारों का सुकुमार शरीर, किशोर श्रवस्था, प्रसन्न मुख श्रीर सरलभाव देख कर सभास्य सज्जनगण मुग्ध हुए। विशोप कर उन सवों के बीच एक वालक की श्रीर सब की दृष्टि श्राकिपत सुई । उसका वेप-विन्यास यद्यपि ऋपिवालक का सा था, तथापि उसके त्राकार से चत्रिय का लच्चण प्रकाशित हीता था। इस छोटी सी उम्र में भी उसका शरीर सुडील श्रीर बिलप्त था, छाती चैाड़ी थी, वाँच शस्त्रधारख के योग्य प्रतीत दोती थी। चेहरे से कीमलता के साथ साथ तेजस्विता सुचित होती थी। वह ध्रुव था।

चीर ऋषिकुमारों के बैठने पर ध्रुष राजा के सिंहासन के समीप जा खड़ा हुआ चीर दोनों हाथ जोड़ सिर नवा कर राजा को प्रधाम किया।

राजा ने कहा—''मैं चित्रय हूँ। तुम श्र्पिपुत्र होकर सुक्षे क्यों प्रकास करते हो ?"

घुत—''श्राप मेरे पिता हैं। मैं श्रापका पुत्र हूँ।'' राजा—''तुम्हारा नाम क्या है ? तुम कहाँ से श्राते हो ?'' ध्रुव—''मेरा नाम ध्रुव है। मैं महर्षि ग्रिति मुनि के ग्राश्रम से ग्राता हूँ।"

राजा के सर्वाङ्ग में माने। विजली दैाड़ गई। उन्होंने घ्रुव को खींच कर गोद में विठाना चाहा, परन्तु संकीचवश वे ऐसा न कर सके। वे गद्गह कण्ठ से वेलि—"वस्स ! मैंने ते। कभी तुमको देखा नहीं। तुम सुभी पिता बता रहे हैं। तुम्हारी माता कीन है ?"

ध्रुव-- "तपोचन में सब लोग उसे आश्रमलच्मी कहते हैं, किन्तु उसका असली नाम है सुनीति।"

सुनीति का नाम सुनते ही राजा प्रेम से विह्वल हो गये। **उनकी लजा दूर हुई। उन्होंने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा कर** घुव से कहा—''आस्रो, प्यारे ! मेरी गोद में बैठो ।" यह कह कर **उन्होंने वड़े** प्यार से ध्रुव को गोद में बिठा कर उसे अपनी छाती से लगाया । उसके स्पर्शे से राजा का शरीर माना सुधासिक हुआ। सभास्थ लोग चित्र की भाँति निर्निमेष नेत्र से इस दृश्य को देखने लगे। कुछ ही देर में यह बात सारे महल में फैल गई कि "बड़ी रानी जीती हैं। उनका बेटा राजसमा में ब्राया है।" यह संवाद बहुत बढ़ा चढ़ा कर महल में पहुँचाया गया। दो एक दासी ने कहा कि हम बड़ी रानी को अपनी आर्थल से राजसभा में देख म्राई हैं। म्रहा ! उनका बदन सूख कर काँटा हो गया है। चेहरा एकदम काला हो गया है। देखने से कोई न पहचानेगा कि ये बड़ी रानी हैं। बड़ी रानी के आने की बात सुन कर सब लोग सुखी हुए, क्षेवल कोई कोई कहने लगे—''घर की लक्सी घर आती हैं तो थ्रावे , किन्तु **उनकी बाधिन सीत क्या उनको सुख से रहने देगी** ?" यह ख़बर सुरुचि के पास तक पहुँचने में देर न हुई। "सुनीित जीती है, उसका बेटा राजसभा में आकर राजा की गोद में बैठा है" सुनते ही थोड़ी देर के लिए सुरुचि वावली वन गई। उसके होश हवास जाते रहे। जिस दिन राजा शिकार खेलने के लिए जाकर अन्यत्र राज विता कर दूसरे दिन घर लीटे, उसी दिन से न भालूम क्यों उसके मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ था। इस समय उसे निश्चय हो गया कि वह सन्देह अमूलक न था। उसका धेर्य और संकोच एक साथ जाता रहा। वह उन्मादिनी की भांति क्रोध से लाल लाल आंख किये, आंचल खाले, सिर के वाल विखराये, राजसभा में आई। उसकी विचित्र दशा देख राजा और राजसभा-सद्गण चिकत हुए। द्वारपाल ने डर कर रास्ता छोड़ दिया। वह एकाएक सिंहासन के पास खड़ी हो बड़े कठोर खर में गरज कर धूव से बोली, ''तू कीन है ?'"

प्रव—"मैं ध्रुव हूँ ?"

सुरुचि-"कीन ध्रुव ? तेरे भाता-पिता कीन हैं ?"

ध्रुव ने राजा की श्रोर उँगली दिखा कर कहा—''देखेा, यहीं मेरे पिता हैं। मेरी माता का नाम सुनीति है।"

सुरुचि---"भिखारिन का वेटा होकर तुम्के सिंहासन पर वैठने का मनेरिय क्यों हुन्ना ?"

् सुरुचि के इस वाक्य से ज्यधित होकर प्रुव ने कहा—"मेरे पिता ने सुक्तको सिंहासन पर विठाया है । श्राप कीन हैं ?" "मैं रानी हूँ । यह धनसम्पत्ति राजपाट सब मेरा है ।" घ्रुव सुरुचि के क्रोघ और गर्व से भरे हुए मुँह की ब्रोर देख कर बोला—"ग्राप रानी ब्रीर मेरी माँ मिखारिन ?"

ध्रुव के इस सरल प्रश्न ने सुरुचि को सर्मान्तिक पीड़ा दी। वह इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर बोली—''यह सिंहासन मेरे बेटे का है, तू इस पर क्यों बैठा ?''

घ्रुव--''यह सिहासन मेरे पिता का है, उन्हों ने मुसको इस पर बिठाया है।"

सुरुचि राजा की ग्रीर रिसभरी चितवन से देख कर बोली--"महाराज ! धिक्कार है आप को ! अब तक आप उस मायाविनी के मेाहजाल में फॅसे ही हैं ! मुक्त पर श्रीर पुत्र पर श्राप का केवल बनावटी स्तेह है। नहीं तो जिस स्त्री को आपने निर्वासित कर दिया, उसके पुत्र को सिंहासन पर क्यों विठाया ?" राजा को इस प्रकार फटकार कर उसने धुत्र की छोर देख कर कहा--- ''मूर्ख वालक ! यदि तुम्ने अपमान का डर हो ते। फिर कभी इस सिहासन पर बैठने का साहस न कर । तूराजा का बेटा होने पर भी मेरा वेटानहीं है। एक दुर्भगास्त्री के गर्भ से तेराजन्म हुआ है। यदि तू मेरे गर्भ से जन्म लोता तो तुभी सिहासन पर बैठने का अवश्य ष्प्रधिकार होता । तुभ्न वनवासीके योग्य यह सिंहासन नहीं।" यह कह कर सुरुचि ने बरजोरी घ्रुव को सिंहासन से उतारने के लिए हाथ बढ़ाया । किन्तु प्रव उस के मन का भाव समभ्र कर पहले ही सिंहासन से उतर गया। सुरुचि के इस बुरे व्यवहार से ध्रव का हृद्य अत्यन्त व्यथित हुआ । बड़े कष्ट से उसने आँख के श्रांसु रोक कर राजा से कहा—"ग्राप, राजाविराज हैं। श्राशी-

र्बोद दें, जिससे में राज-पद से भी कोई उचतम पद प्राप्त कर सक्तूँ।" श्राप ऐसा हो श्राशीर्वाद दीजिए जिस में यह सिंहासन मेरे योग्य न हो।"

ध्रुव अव वहां चल भर भी न रह सका । उसी वड़ी वड़ां से चल दिया । उसके साधी ऋषिक्रमार भी रोपभरी दृष्टि से सुरुचि की ओर देखते हुए ध्रुव के पीछे चले। सुरुचि के न्यवहार से राजा किंकर्तन्य-विमूद्र हो रहे थे, ऋषि-बालकों के जाने के साथ साध उन्होंने सभा विसर्जन की।

इधर ध्रुव के एकाएक श्रन्तिहिंत होने से सुनीति श्रत्यन्त ज्याकुल हो रही थी । पीछे जब उसने सुना कि धूव ग्रन्यान्य ऋपि-वालकों के साथ यमुना के किनारे से पूरव की ग्रीर गया है तब वह मन ही मन सोचने लगी कि, ध्रुव ज़रूर ही राजधानी को गया है। लड़का इवनी दूर पैदल कैसे जायगा, राजा उसे देख कर क्या कहेंगे, दुएात्मा सुरुचि उसके साथ कैसा व्यवहार करेगी, इस चिन्तासे सुनीति काचित्त बड़ाही न्यप्रधा। वह ध्रुव के **ग्राने की बाट जोह रही थो। धुव के श्राने पर वह उसका उदास** चेहरा देखते ही समभागई कि उसके मन में गहरी चाट लगी हैं। उसने उसे वहुत सान्लना दी, परन्तु धुव का मन किसी तरह शान्त न हुन्रा। राजसभा में वह लोकलज्जा से मन के छेश की रोके हुए था। किन्तु माताके निकट वह श्रपने धैर्यकी रचान कर सका। वह भार्तस्वर से राने लगा। उसका राना देख सुनीति के हृदय में बड़ा कष्ट हुन्ना । उसने उद्विच होकर घ्रुव से पृछा—''तुम

इस तरह अपीर होकर क्यों रेाते हो ? क्या तुम्हारे पिता ने तुमसे कुछ कहा है ? या तुम्हारा तिरस्कार किया है ?"

घुव—''नहीं माँ! उन्होंने बड़े प्यार से मुक्ते गोद में लेकर सिंहासन पर विटाया। किन्तु उसी समय एक छी न मालूम कहाँ से एकाएक वहाँ थ्रा पहुँची। उसके वाल विखरे थे, थ्रांचल का कपड़ा घरती पर गिरा था। उसकी थ्रांख से माने। ग्राग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। उसने गरज कर मुक्ते कहा—''तू भिखारिन का बेटा होकर क्यों सिंहासन पर बैठा है ?'' मैंने कहा, ''पिता ने मुक्ते विटाया है ।'' यह भुन कर उसने कितना ही मुक्त से कहा, वह आपसे क्या कहूँ ? वह मेरे पिता को घिकारने लगी। उमको उसने दुर्मगा कहा। प्रधात उसने ज़बरदस्ती मुक्ते लगी। उसको उतार देने की चेष्टा की, परन्तु में अपमान के भय से पहले ही उतर गया। मां। वह कीन थी ?'' मुनीति सब समक गई, बोली, ''वह तुम्हारी सैतिली मां थी।''

ध्रव---"सैतिली माँ क्या ?"

सुनीति---''तुम्हारे पिताकी दूसरी पत्नी। तुम्हारे पिताने जिस तरह मेरे साथ व्याह किया था उसी तरह उसके साथ भी ब्याह किया है।''

भ्रुव---"मां ! तो वह रानी श्रीर तुम मिखारिन क्यों ?"

सुनीति—''यह भेरे कर्मका फल है। वेटा! क्या तुमने अपनी विसाता से कुछ कहा था?''

ष्ट्रव--- "नहीं माँ! मैंने उनसे कुछ न कहा। मैंने केवल पिता से कहा था--- "पिताजी! आप राजाधिराज हैं। आप आशीर्वाद दीजिए, जिसमें में राजपद से भी कोई ऊँचा पद प्राप्त कर सकूँ।"

सुनीति ने ध्रुव की गोद में लेकर उसका सुँह चूमा और कहा—"वेटा ध्रुव! भगवान तुम्हारा मनेारच अवस्य पूर्ण करेंगे। तुम उन्हें प्रेम से पुकारा।"

ध्रुव-- "माँ, मैं उन्हें क्या कह कर पुकारूँ ?"

सुनीति—"तुम, उन्हें यह कह कर पुकारना—भक्तत्वलल नारायस, दीनवन्धु ! आश्रो ।"

घ्रव--"मेरे पुकारने से वे सुनेंगे ?"

सुनीति—"क्यां नहीं सुनेंगे।"

ध्रुव---''वे कहाँ हैं ?''

सुनीति—"ने इस प्राकाश में हैं, नायु में हैं, जल में, यल में, मेरे, तुम्हारे भीतर सर्वत्र ज्याप्त हैं। तुम प्रेम से पुकारीगे तो ने ग्रवस्य दर्शन हेंगे।"

धुन—"माँ, ते। मैं चला । तुम मेरे लिए कुछ चिन्ता मत करो। जब तक मुम्मे उनका दर्शन न होगा तब तक मैं न लीहुँगा।"

मुनीति—''तुम कहाँ जाश्रोगे ? तुम यहाँ मेरे पास बैठकर दयानियान मगदान की पुकारो । तुम वालक हो, मैं तुमको श्रमी श्रकोले बने जङ्गल में न जाने दूँगी ।"

घुव—"नहीं, मौं, मैं न मानूँगा। जहां मुक्ते कोई न देखेगा, मैं वहीं वैठकर अपने भगवान को पुकास्त्रा। तुम कहती ही, वे घट घट में विराजमान हैं। कोई स्थान ऐसा नहीं, जहां वे न हीं, तब तुम्हें हर क्या ?"

सुनीति ने घ्रुव को कितना ही समभाया वुभाया, जब वह

किसी तरह उसके मन को न फेर सकी तब उसने घ्रपने हाथ से वैच्याव के भेस में सँवारा। उसके जन्ये वालों को समेट कर जुड़ा वीच दिया; वस्त्र खेलकर वल्कल पहना दिया; कण्ठ में तुलसी की माला पहना दी, उसके ललाट में गोपीचन्दन का तिलक कर दिया। इसके ध्रनन्तर उसका सुँह चूम कर हाथ लेड़ रोते रोते वेलि—

"भक्तकत्सल, भगवान् ! प्रुव इतने दिन मेरा था। त्राज से वह त्रापका हुआ। आप उसको रचा करें।"

घून माता की चरण की धूल सिर पर डाल कर निदा हुआ। श्रिति मुनि के तपोवन से दूर, घने जङ्गल में ध्रुव ने आश्रम वनाया । स्राप्रम नाममात्र का था। कुटी या फोंपड़ा कुछ न था। एक बहुत पुराना वड़ का पेड़ था, उसके नीचे एक चिकना पत्थर था, उसी पर घ्रुव का सोना, वैठना ग्रीर भगवान का भजन श्रादि करना होता था। लड़का तपस्या की विधि कुछ न जानता था। श्रासन, प्राणायाम, प्रत्याहार श्रीर ध्यान, श्रादि कैसे किया जाता है, यह भी वह नहीं जानता था। माता ने जिस महासन्त्र की शिचादी थी, घुव दिन रात वही जपा करता था। वही मन्त्र ध्रुव के लिए जप, तप, पाठ पूजा ग्रादि सब कुछ था। माँ ने कहा था. ''भगवान् सब में विद्यमान हैं, इसलिए ध्रुव तरुलता, पशुपची श्रादि जिसे देखता था, उसी से कहता था- 'क्या तुन्हीं सेरे कमलनयन हरि हो ?" प्रेम की महिमा ही ऐसी है, नया चेतन क्या अचेतन सभी उसके द्वारा वश में होते हैं । ध्रुव के प्रेमगुएं से बाय, भालू श्रपनी हिंसात्मक दृत्ति छोड़कर शान्त भाव से रहने

लगे। अचेतन पृत्त श्रीर लतायें असमय में फूलने फलने लगां। कठोर परवर को छेद कर निर्मल जल का स्रोत बहने लगा। ध्रुव दिन रात केवल यही पुकारता, कमलभयन, नारायण ! कहां हो ? आखा।। मां ने ध्रुव से कहा था, "अच्छी तरह पुकारने से वे अवश्य आवेंगे।" ध्रुव सोचवा था, "में इतना पुकारता हूँ, तो भी मेरे भगवान क्यों नहीं आते ?"

इसी तरह चहुत दिन चीते । एक दिन प्रुव ने देखा, "एक भन्यमूर्ति पुरुप उसके पास ध्रा रहे हैं। उनके सिर का वाल विलक्षल सफ़ेद है, लम्यो सफ़ेद ढाड़ी ढोड़ी तक लटक रही है। श्वेत वख पहने हैं। श्वेतपुष्प की माला कण्ठ में सुरोपित है। सुस प्रसन्न है। होठों पर सुस्कुराहट छाई है। मीठे स्वर में चार बार भगवान का नाम ले रहे हैं। प्रुव ने सोचा, "यही मेरे दीनवन्तु भगवान हैं। जिनको मैं इतने दिन से पुकार रहा था, वे सुभको दर्शन देने के लिए था रहे हैं।" प्रुव दौड़ कर गया और अपनी दोनों छोटी वाहों से लिपट कर उनसे पूछा—"क्या आपही मेरे कमलनयन भगवान हैं ?"

त्रागन्तुक घुव को गोद में लेकर वोले—"मैं तुम्हारे भगवान् का दासानुदास हूँ। मेरा नाम नारद है। उन्होंने नुम्हारी खबर लेने के लिए सुमको भेजा है।"

घ्रुव--''क्या उन्होंने मेरी पुकार सुनी है ?"

धुव--''ता वे ग्राते क्यों नहीं ?"

नारद—"मैं लीट कर उनके पास गया कि वे ध्राये।"

यह सुन कर ध्रुव को आंखों से आनन्दाश्रु वह चला। नारह ने प्छा—"तुम किस तरह उन्हें पुकारते हो, एक बार सुमको सुनाओ।"

ध्रुव ने बड़े प्रेम सेपुकारा—''कमलनयन हरे ! कहाँ हो, ब्राक्रो।" नारद—''श्रोर कुछ नहीं कहते ?''

ध्रव-"नहीं, माँ ने इतना ही सिखाया है।"

नारद—''श्रप्छा, श्रव मैं जिस भौति पुकारने को कहता हूँ पुकारो। पुकारो, कमलनयन, भगवान ! कहाँ हो, आश्रो, सुभ पर दया करो।''

ध्रुव---''कमलनयन भगवान् ! कहां हो, आश्रो, सुक्त पर दया. करो।''

नारद ने कहा—''कहो, कमलनयन, हरे ! कहाँ हो, ब्राख्री, भेरी माता पर दया करो।"

ध्रुव--- 'कमलनयन, हरे ! कहाँ हो ? आओ, मेरी माता पर दया करे। ।''

नारद-"कहो, भगवान् ! मेरे पिता पर दया करो ।"

ध्रुव--"भगवान् ! मेरे पिता पर दया करो ।"

नारद---''कहो, कमलनयन, करुवाकर ! कहाँ हो, श्राकर दर्शन दो, मेरी सैतिली माँ पर इया करो।''

ध्रुव चुप हो रहा। नारद ने कहा—''ध्रुव, चुप क्यों हो रहे ? कहो, मेरी सैतिली माँ पर दया करे।''

घ्रुव ने कहा—''डसने मुक्तको बहुत दुःख दिया है।'

नारदः—"इसीलिए तुमको उसके निमित्त भगवान् से यह वात कहनी होगी।"

ध्रुव फिर चुप हो रहा।

नारद बोले—''ता में जाता हूँ। क्या तुम नहीं जानते कि भक्त का कष्ट वे अपना ही कष्ट समभते हैं ? सीतेली माँ के कठोर कि क्य से जो तुमने कष्ट पाया है, उसकी अपेका तुम्हारे कमलनयन ने अधिक कष्ट पाया है। तो भी वे तुम्हारी सीतेली माँ की मलाई वाहते हैं, तुम उसकी भलाई नहीं बाहते ?''

ध्रुव कुछ देर नारद से मुँह की श्रोर देखता रहा, तिसके घाद उसने पूछा—"क्या कहा ध्रापने ? मेरे कमलनयन मेरी सीतेली मां का हित चाहते हैं ? तो में भी हित चाहूँगा।" कह कर उसने कहा—"मेरे कमलनयन, प्रभो! कहां हो, श्राच्यो। मेरी सीतेली मां पर ट्या करो।"

इतना कहते ही प्रुव ने देखा, नारद मुनि धन्तर्थात हो गये। एकाएक अपूर्व प्रकाश से समूचा जङ्गल देदीप्यमान हो उठा। चारों ग्रेगर से दिन्य सुगन्ध आने श्रीर अश्रुत-पूर्व मधुर सङ्गीत ध्रुव के कान में श्रुलीिक सुख उपजाने लगा। जो मूर्ति इतने दिन से ध्रुव के मन में विहार कर रही थी, वह थाज उसकी श्रांखों के सामने प्रकट हुई। भक्त के साथ भगवान का मिलन कैसा ब्रानन्दप्रद होता है, इसका वर्धन शब्दों द्वारा नहीं हो संकता। जिसने जन्म पाकर कभी इस सुख का घास्वादन किया है, वही इसका श्रुभव कर सकते हैं।

कमलनयन प्रमु का दर्शन पाकर प्रुव कृतार्थ हुए ग्रीर उनके

श्रविच्छेद दर्शन की शक्ति लाभ कर फिर अपनी भावा के आश्रम को लीट आये।

सुनीति गोद के वालक प्रुव को पाकर बहुत प्रसन्न हुई । माने। हाथ की खोई हुई निषि फिर उसे मिल गई। वह आनन्द से विहुल हो भगवान को धन्यवाद देने लगी। अति मुनि, उनकी पत्नी, श्रीर अन्यान्य ऋषि सथा उनकी पित्नयों ने सुनीति की छुटी में प्रवेश कर ध्रुव को वहें प्यार से गोद में विटाया और आशीर्वाद दिया।

महर्षि अत्रि ने कहा—"इतने दिन के अनन्तर मेरा आश्रम यथार्थ में पुण्यस्थान हुआ । भक्तचूड़ामिश ध्रुव को छाती से लगा कर आज मैं कृतार्थ हुआ ।"

घुव ने जिस समय अपनी सौतेली माँ के लिए ईश्वर से प्रार्थना की थी, उसी समय से सुरुचि की चित्तवृत्ति बदलं गई। वह धुव को गोद में लेने श्रीर सुनीति से अपने अपराध की चमा-प्रार्थना करने के लिए ज्यम होकर अतिशोध राजा उत्तानपाद के साथ सहिए अपने के आश्रम को गई। वहाँ जा सुनीति की कुटी में प्रवेश कर वह उसके पैरें। पर गिर कर बार बार चमा के लिए प्रार्थना करके कहने लगी—"बहन, मैं उन्मादिनी हो गई थी, मेरे सिर पर खार्थक्पी भूत सवार हो गया था, मेरा अपराध चमा करों, नहीं तो मैं प्राष्ट्र साग दूँगी।"

सुनीति ने कहा--- "वहन, तुम घन्य हो, तुम्हारी कठोर वायीः ने अमृत का काम किया। तुमसे तिरस्कृत होने ही के कारण ध्रुव ने कमलनयन हरि का दर्शन पाया। तुम्हारा एक भी अपराध मेरे

पतित्रता । €8

समय को सुखपूर्वक विताने जुगी।

मन में स्थान नहीं पा सकता। श्राञ्री, हम तुम दोनें मिल कर पूर्ववत्

पति की सेवा करके नारी-जन्म की सफल करें।"

सुनीति के शेष जीवन का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक वर्णन करने

की प्रावश्यकता नहीं। वह ग्रत्रि मुनि ग्रीर उनकी पत्नी तथा

श्रन्यान्य ऋषिपव्रियों से मिल कर सबसे ब्राशीर्वाद ले पति पुत्र के साथ राजधानी को लौट गई। घ्रव की माता का जैसा सम्मान होना चाहिए, उस सम्मान को पाकर वह अपने जीवन के शेष

तीसरा श्राख्यान

गान्धारी :

ॐ्रांश्युनद के पश्चिम किनारे जी ज़मीन क्रमशः ऊँची होकर उत्तर पश्चिम की क्षेतर खेत पर्वत से जा मिली है. पूर्वकाल में उसका नाम गान्धार देश था। इसी गान्धार शब्द से इस प्रदेश का

कुछ ग्रंश ग्रव तक 'कृन्दहार' नाम से मशहूर है। हम जिस समय का क्तान्त लिख रहे हैं, इस समय गान्धार

देश का राजा सवल था।

गान्धार देश प्राकृतिक विलच्छ शोभा से भरा था। कहा कोसी तक मैदान, कहीं दुर्गम पहाड़ी भूमि, कहीं सवन वन, और कहीं उचिगिरिशिखर इस देश की शोमा को बढ़ा रहे थे। जाड़े के मौसम में पहाड़ के खुदूससमूह वर्ष से ढँक जाने के कारण रजत पहाड़ की भाँति सुन्दर देख पड़ते थे। वसन्त ऋतु में वे भाँति भांति के त्रण, लता ग्रीर पैथिं से भूषित होकर श्यासल शोभा से दर्शकों के नयन तुप्त करते थे। गरमी के दिनों में सारा प्रदेश त्रानार के फल सा लाल हो जाता था। वरसात में गृहस्थों के घर, भाँगन, वन उपवन भ्रादि सभी स्थान गुच्छ के गुच्छ दाख के फलों से भर जाते थे। गान्धार देश के खेतों में पुष्टिकारक सुस्वाद अन उपजते थे, वार्गों में भाँति भाँति के असूत से मीठे मेंने फलते थे, नदी की बालुओं में सोने के कण पाये जाते थे। देखने से यही

जान पड़ता था जैसे जन्मी ने इस देश को अपना क्रीड़ा-स्थल बनाया है।

राजा सुबल के एक वेटा था और एक देटी। वेटे का नाम शकुनि, और बेटी का नाम गान्धारी था। इतने श्रच्छे श्रच्छे नामें। के रहते राजकुमार का नाम शकुनि क्यों रक्खा गया, यह वत-लाना कठिन है। जान पढ़ता है, उसका खरूप श्रीर खभाव कुछ कुछ गिद्ध से मिलता था इसीलिए लोग उसे शकुनि नाम से प्रका-रने लगे होंगे। खरूप उसका जैसा कुछ रहा हो परन्तु उसके स्वभाव में अवश्य गिद्ध का लच्चा था। गिद्ध की भांति उसकी दृष्टि बड़ी तीन्य थी। गिद्ध जैसे दृष्टिपथवर्ती वस्तुओं में मुदीं को छोड ग्रीर वस्तु में विशेष प्रीति का ग्रनुभव नहीं करता, राजकुमार शक्ति भी वैसे ही सांसारिक अनेक विषयों में लोगों के बुरे के सिवा श्रीर किसी कार्य में विशेष सुख का श्रतुभव नहीं करता था। वासपन से ही उसकी कपट बुद्धि प्रकाशित होने लगी थी। किन्तुः राजा सुवल के वही एक सात्र पुत्र या इसलिए कोई उससे कुछ न कहता था। वल्कि ख़ुशामदी लोग कहा करते थे कि—''राजक्कमार जैसे तीच्णबुद्धि हैं, उससे जान पड़ता है, युवावस्था में वे एक श्रसाधारण राजनीतिज्ञ होंगे।"

राजकुमारी खरूप श्रीर स्त्रभाव में भाई से विलक्कल जुदी थीं। गान्धार देश की क्षियां उस समय अनुपम सौन्दर्य के लिए सर्वत्र प्रसिद्ध थीं। किन्तु गान्धारी उन सवीं में एक थीं। उसके श्रागे वड़ी वड़ी रूपवती कियों का रङ्ग रूप कीका मालूम होता था। उसको देखने से यहीं जान पहता थां जैसे स्तर्ग से कोई देवकन्या भूमण्डल में उतर आई है। वाहरी सौन्दर्य की अपेचा उसका मानसिक सौन्दर्य और मी प्रशंसनीय था। वह गुरुजनों के प्रति भक्तिमती, देवता ब्राह्मणों के प्रति श्रद्धावती और आश्रित जनों के प्रति दयावती थी। वह अपनी सुशीलता के कारण नगर-निवासियों के विशेष आदर की पात्री बनी थी। सब गुखों से विशेष गुण उसमें यह था कि वह माता-पिता के आदेश को सर्वोपरि मानती थी।

राजकुमार श्रार राजकुमारी दोनों जन क्रमशः थुनल को प्राप्त
हुए तब राजा सुनल पुत्र को राज्याभिषेक कर कन्या के लिए
उपयुक्त वर खोजने में प्रवृत्त हुए। राजकुमारी के रूपगुण की
प्रशंसा सुन कर देशदेशान्तर के भूपगण दूत के द्वारा गान्धार-राज
के पास व्याह का पैगाम भेजने लगे। एक तो राजकुमारी अनुपम
सुन्दरी थीं; दूसरे वह महादेव की आराधना से बहुपुत्रवती होने
का वरदान पा चुकी थी। इसलिए कितने ही पुत्राभिलाणी राजा
और राजकुमार उसके साथ व्याह करना चाहते थे। उन लोगों के
भेजे हुए दूत बरानर महाराज सुनल की राजधानी में आते जाते
थे। किन्तु उन प्रार्थी राजगणीं में सबसे थेग्य कौन हैं, इसका
निर्णय न कर सकने के कारण सुनल कहीं कन्या का सम्बन्ध
स्थिर सहीं कर सकते थे।

योही कुळ दिन वीतने पर खबर ख्राई कि हस्तिनापुर से कुरुकुल के गीरवस्तरूप मीष्म का भेजा हुआ दूत राजकुमारी के व्याह का पैगाम लेकर श्राया है। राजा ने दूत को यथोचित सत्कार करने की श्राक्षा दे, युवराज शकुनि और प्रधान मन्त्रा के साथ सभागृह में प्रवेश किया। कुछ ही देर में दूत श्रीर उसके साथी लोग राजा के समीप उपस्थित हुए । बहुतेरे भारवाहक भाँति भाँति के बहुमूल्य उपहार लेकर दूत के साथ श्राये थे। कोई रब्रजटित सोने के प्रनेक भूपण, कोई जड़ाऊ रेशमी कपड़े, कोई इत्र गुलाव, चन्दन थ्रीर कपूर श्रादि सुगन्धित पदार्थ, कोई राजाश्रीं के ज्यवहार योग्य बहुमूल्य श्रस्त शस्त्र लाये थे। नाना प्रकार के पकवानों का भी श्रभाव न था। दूत ने उपहार की सब वस्तुग्रें। को यथास्थान रखकर श्रभिवादनपूर्वक राजा से विनयपूर्वक कहा---''महाराज ! कुरुकुलश्रेष्ट भीष्म ने श्रापकी नमस्कार करके कुप्राल पूछा है। उन्होंने सुना है कि श्रापके एक विवाह-थाग्य कन्या है। उन्होंने ग्रपने भतीजे धृतराष्ट्र के लिए वह राजक्रमारी मांगी है। उन्होंने कहा है कि इस सम्बन्ध से दोनों राजवंशों की मानरचा होगी श्रीर वंशक्रमागत श्रीति श्रीर भी दृढ़ होगी। श्रव श्रीमान की जैसी इच्छा हो।"

राजा ने कहा—''हम तुम्हारी मीठी वावों से वहुत प्रसन्न हुए। कुठवंशी के साथ वैवाहिक सम्बन्ध करना निःसन्देह प्रतिष्ठा की वात है। किन्तु इस विषय में सब वावों का विना विचार किये सहसा उत्तर हे देना ठीक नहीं। तुम लोग बहुत हूर से आने के कारण धके हुए हो, आज विश्राम करो। कल हम तुम्हारे प्रश्न का जिल्ला उत्तर देंगे।"

दूत राजा की प्रधास करके अपने साधियों के सहित बाहर गया। तब राजा ने वृद्ध सन्त्री से पूछा—"इस विषय में आपकी क्या राय होती हैं ?" मन्त्री—''महाराज! इस विषय में हमारी राय युक्तिसंगत न होगी। महाराज जो विचार करेंगे वही ठीक होगा। महारानी श्रीर युवराज के साथ परामर्श करके जो कर्तव्य हो महाराज स्थिर करें।''

शकुनि—''जिन बातों का सम्बन्ध राजनीति से हैं, और जिस विषय पर राज्य का हिताहित निर्मर है, अन्तःपुर में उसकी आलोचना उचित नहीं। उसका विचार यहीं होना ठीक है।"

मन्त्री---''इस विषय को साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है, यह मेरी समभ्क में नहीं झाता।"

मन्त्रो—"युवराज ! मैं बूढ़ा हुआ, बुढ़ाएं के कारण मेरी इन्द्रियाँ शिथिल हो गई हैं, बुढ़ि सन्द हो गई है, इसलिए मेरी भूल चमा करें। राजकुमारी की इस विवाह-वार्ता के साथ राजनीति का क्या सम्बन्ध है, यह आप कहिए।"

शकुनि—''सो पीछे कहूँगा । मेरा और मेरी माता का श्राभिप्राय महाराज जानेहींगे । आप अपना श्राभिप्राय कह सुनाइए।''

राजा ने भी कहा—''हाँ, आप कहने में कुछ संकोच न करें। आप वंशपरस्परा से मेरे शुभ-चिन्तक हैं। जो आप अच्छा समार्के वह निर्मय होकर कहें।"

मन्त्री—''महाराज ! मैं क्या निवेदन करूँ ? कुछवंशी के साथ सम्वन्य करने में कोई हानि नहीं । परन्तु राजकुमार धृतराष्ट्र जन्मान्य हैं । उनके साथ जन्मीखरूपा राजकुमारी का ७० पतित्रता ।
व्याद करना उचित है या नहीं, यद सर्थ महाराज विचार करें।"
राजा—"भुरताष्ट्र जन्मान्य हैं।"
मन्त्री—"हां महाराज ! जन्मान्य हैं।"
राजा—"वां यद व्याद कैसं होगा ? शकुनि ! तुम क्या
फढ़ते हो।"
सकुनि—"में बपनी राय पीछं कहूँगा। पहले में मन्त्री
महायय से कई वार्षे पुरुता चाहता है। सम्ह्या कहिए तो स्वाप

कुम्भवर्षे में त्रिवेशी-स्तान करने प्रयाग गर्य ये १'' सम्त्री—"'हां ।'' शकृति—"'धाप को छारम ई. उस समय कितने राजकुमार वर्षा धारों ये १''

वहां भावे थे १º मन्त्री—''हज़ारां।'' राकुति—''दन राजकुसारां में पृतराष्ट्र के समान कार्ड

पञ्चान कर राजकुमारा में धृतराष्ट्र के समान काई सुन्दर वा।" मन्त्री—''नहीं। रूप में ये साजात कार्विकंप के समान हैं।"

यक्ति—''वल-पराक्रम में वे फैसे हैं ?'' मन्त्री—''पढ़े बढ़े मच हाथों भी उनके सामने सिर नहीं उठा सकते । उनके बढ़ा के सम्बन्ध में जो मैंने अपनी श्रांस से देखा है, बहु आप से निवेदन करना हैं। क्यू में के दिन कर नहने

देखा है, वह ष्राप से निवेदन करता हूँ। पर्व के दिन पड़े तड़कें कामरूप के महाराज का एक यड़ा विशाल हाथी पागल होकर महानत को सार यात्रियों को रीदंता हुमा संगम की श्रोर दीख़ा जा रहा था। उसे देख जनसमृह में भारी कीलाहत

हुआ । चारों श्रीर इलचल मच गई। सभी लोग प्राणभय से

जिधर तिघर भागने लगे । इधर मत्त हाथी सामने में जेा पड़ता उसे पैरों से कुचलता तीर्थवासियों की कुटी को सूँड़ से तोड़ता हुन्रा कमशः श्रागे बढ़ने लगा । राजकुमार उस समय ख़ेमे के भीतर थे। वे यह ख़बर पाते ही बाहर आकर खड़े हुए। उनके इष्ट मित्र नौकरों ने उन्हें बहुत रोका, पर उन्हेंाने किसी की बात पर ध्यान न दिया। हाथी उन्हें रास्ते में खड़े देख, सजीव पहाड़ की भाँति बढ़े वेग से उनकी थ्रोर दैं। । ''राजकुमार मरे, राजकुमार मरे'' यह वाक्य उच्चारित होते न होते हाथी उनके पास जा पहुँचा श्रीर सूँड़ से लपेटकर उन्हें दे मारना चाहा, राजकुमार उसके घंटानार से उसको ग्राते हुए जानकर पहले ही से सावधान हो खड़े थे। उन्होंने उसके आक्रमण करने के पूर्व ही एक बड़े मोटे लोहे के डंडे से उसे इस ज़ोर से मारा कि वह पाँव में सख्त चाट खाकर तुरन्त धरती पर गिर पड़ा । यह देख कर तीर्थवासी साधु-संन्या-सीगण श्राकर श्रानन्द से पुलकित होकर राजकुमार की श्रांशी-, र्वाद देने लगे। महाराज! मैं सच कहता हूँ, राजकुमार के तुल्य बलवान विरला ही कोई होगा।

शकुनि—''उनका शास्त्रज्ञान कैसा है ?'' मन्त्री—''सुना है, वेदवेदाङ्ग सब उन्हें कण्ठस्य हैं।''

शकुनि—''उनके वंशगीरव के विषय में भ्राप कुछ जानते हैं ?''

मन्त्रो—''चन्द्रवंश के गैरित के सम्बन्ध में कुछ कहना व्यर्थ है। राजा ययाति, पुरु, दुष्यन्त श्रीर कुरु श्रादि राजर्षियों ने इसी वंश में जन्म प्रहण कर इस की मर्यादा बढ़ाई है।" शक्कृति—"मन्त्रिवर ! तो इनमें देाप क्या १" मन्त्री—"वे जन्मान्ध हैं।"

शक्ति-तव ता ''विद्येव झानिनां चन्नुः "

यह बाक्य श्रापके विचार से व्यर्थ होता है ? ज्ञानी पुरुपों की चर्मचत्रु रहे चाहे न रहे, इससे क्या ?

मन्त्री—''मेरी अल्पवृद्धि में जो वात अच्छो जान पड़ी वह मैंने कही । कर्तच्य अकर्तच्य के निर्णय का मार आप लोगों के ऊपर निर्भर है।"

राजा—"हाय ! हाय ! इतने दिनों के बाद कुल, शील, रूप, गुण में यदि एक योग्च वर मिला भी तो नंत्रहीन ! शकुनि ! में ऐसी रूपवती कन्या का ध्याह श्रन्थे वर के साथ कैसे करूँगा ?"

शकुति—''महाराज ! राजधर्म वड़ा कठिन हैं। उसमें माथा ममता की अपेचा भविष्यत् मङ्गत्त को लिए चित्त की दृढ़ता ही अधिक प्रयोजनीय है। मन्त्री महोदय हमसे पृद्धते थे, इस विवाह के साथ राजनीति का सम्यन्थ क्या है ? अच्छा, हम समभाये देते हैं। सुनिए।"

हम लोगों के इस गान्धार देश पर वहुतों की दृष्टि गड़ी है। एक तरफ़ शक श्रीर वाहोक श्रादि श्रसभ्य जाति इस स्रत्न धन से सम्पन्न देश को लूटना चाहती है। दूसरी तरफ़ पश्चनदवासी राजगण सांसलेलिय विद्वी की भांति इसे भन्धटने के लिए घात लगाये बैठे हैं। इस स्रवस्था में किसी प्रवल राजवंश के साथ सम्बन्ध जोड़ना हम लोगों का नितान्त कर्तव्य है। ऐश्वर्य श्रीर पराक्रम में कुरुवंश ध्रमी भारत के समस्त भूपाणों से बढ़ा चढ़ा है। उसके साथ वैवाहिक सम्बन्ध होने से क्या ध्रार्थ, क्या ध्रनार्थ, कीई शत्रु हम लीगों के श्रनिष्ट करने का साहस नहीं कर सकेगा। राजकुमारी की धृतराष्ट्र के साथ व्याह देने से हम लीग समरविजयी वीर भीष्म को ध्रपने पच में ला सकेंगे। श्रन्यधा उनके कीय-भाजन वनेंगे। यह साधारण वात नहीं है। महाराज! आप श्रपने राज्य के कल्याणार्थ इस सम्बन्ध की सम्मति दीजिए, राजधर्म के रचार्थ श्रयोष्याधीश महाराज रामचन्द्र ने धर्मपत्नी की निर्वासित कर दिया था। क्या यह बात श्रापसे छिपी है १"

राजा—"वत्तः! तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु तुम्हारी माँ तो राजधर्म्म नहीं जानतीं। वे क्या कहेंगी ? या गान्धारी ही क्या सोचेगी ?"

शक्किन---"महाराज! आपकी आज्ञा का भङ्ग कैं।न करेगा ? माँ अपनी ज़िन्दगी में कभी आप के प्रतिकृत्त वात बेाल ही नहीं सकती। वहन गान्धारी का तो कुछ कहना ही नहीं। वह तो आपके वचन का देववायी से भी बढ़ कर आदर करती है।"

राजा--- ''सच है। किन्तु गान्धारी सी कन्या को अन्धे वर के साथ ब्याह देना क्या उचित होगा ?''

शकुनि—"महाराज ! सभी लोगों के मुँह से यही एक बात "भ्रन्य, ग्रन्थ" सुनाई देती है। सच पूछिए तो नेत्र मनुष्य का एक भारी शत्रु है। नेत्र ही रूप की लालसा उत्पन्न करता है। इसी रूपजाल में फँस कर कितने ही राजकुमार पतिप्राणा पत्नी को तज कर दूसरा ज्याह करते हैं। भृतराष्ट्र के साथ ज्याह होने से राज- कुमारी को सीत की आराङ्का न रहेगी। मैं वहन गान्धारी का सम्भाव मली भाँति जानता हूँ। पति अन्धा या लूला ही लँगड़ा क्यों न होगा, वह उसे देवता जान कर सेवा करेगी, पतिसेवा करके वह आप सुखी होगी और पति की भी सुखी करेगी।"

राजा--''बेटा शक्ति ! देखता हूँ, तुम वहें दीर्घदर्शी हो । मग-वान तुम्हें चिरकावी करें। जब तुम कहते हो कि इस संम्यन्ध से राज्य का कुशल होगा श्रीर गान्धारों के मन में भी दु:ख न होगा तत्र इसमें मेरी श्रसम्मति नहीं । में रानी की श्रपना श्रमिप्राय सुचित करने के लिए अन्तःपुर जाता हूँ। तुम सन्त्री महाशय के साध परामर्श करके उपयुक्त प्रत्युपहार की ग्रायोजना करे। मैं कल ही इस्तिनापुर इत भेज्ँना । जब तुम्हें पसन्द है वी यही सम्बन्ध स्थिर हुआ।" यह कह कर राजा धन्त:पुर गये। किन्सु उनके धन्त:पुर जाने के पूर्व ही राजकुमारी के ज्याह की खबर वहाँ पहुँच गई थी और इस बात को लेकर महल के भोतर भारी धान्दोलन हो रहा या। कोई कह रही थी, राजा ने यह क्या किया, ऐसी सीने की प्रतिमा की अन्ये के हाथ दिया ! कीई वेाली---''यह ते। जानी हुई वात है, जब वैसे वैसे सुन्दर वर फिर गये, कोई राजा, ग्रीर रानी को पसन्द न आया, तव अन्त में ऐसा होना ही चाहिए।" एक ने कहा—"श्रीर जो कुछ हो, वंश बहुत उत्तम है।" दूसरी स्त्री वोली--''यही कैसे कहूँ ? वाप मरने के बहुत दिन बाद ते। इस लड़के का जन्म हुआ था। जो कुछ हो, इस सबों की इससे क्या मतलव ? जिनकी लड़की है, वे यदि उसे पानी में फेंक दें तो हम सब क्या करेंगी !"

धीरे धीरे यह वात राजकुमारी गान्धारी के कातो तक जा पहुँची। उसकी एक प्रिय सखी उदास मुँह किये उसके पास आकर वोली—''प्यारी सखी। एक बात सुन कर मन में बड़ा दु:ख हुआ है। नहीं तुम से कहने आई हूँ।"

गान्थारी—''सखो ! तुम्हें बहुत उदास देखती हूँ, क्या सुन कर आई हो, कहो ।''

सखी—''तुम्हारे ध्याह की बातचीत पक्की हो गई।''

गान्धारी ने हँस कर कहा--''हुई तो हुई, इसके लिए तुम इतनी खदास क्यों हो ? क्या तुम चाहती हो कि मैं बुढ़ापे तक छुमारी रह कर तुम्हारे ही पास रहूँ ? कहां सम्बन्ध स्थिर हुआ है ?"

सखी-"हिस्तिनापुर के राजकुमार धृतराष्ट्र के साथ।"

गान्धारी ने मुस्कुरा कर कहा—''तुम्हारे साथ न है। कर मेरे साथ उनके व्याह की बातचीत हुई है, क्या इसी से तो तुम इतनी उदास नहीं देख पड़तीं ? इसके लिए इतना सोच क्यों ? तुम तो मेरे सुख-दु:ख की संगिनी हो, न हो तो तुम उस में ग्राधा माग ले लेना।"

सस्ती—"तुम नहीं जानतीं कि विधाता ने तुम्हारे घटष्ट में क्या लिख दिया है। इसी कारण तुम ग्रुम से व्यङ्ग करती हो। सुना है, राजकुमार धृतराष्ट्र जन्मान्य हैं।"

सुनते ही राजकुमारी का हृदय कांप ठठा, किन्तु जेहरे पर जरा भी उदासी का चिह्न दिखाई नहीं दिया। उसने कहा—"क्या सच-मुच ही बातचीत पक्षी हो गई ? किसने सम्बन्ध स्थिर किया है ?" सखी—"खर्य महाराज ने। सुना है, कल ही राजदूत यह संवाद लेकर हस्तिनापुर जायगा । पहले महाराज की इस विवाह
में सम्मति न घी, किन्तु युवराज ने जब उन्हें समभ्मा दिया कि
गान्वारराज्य के कल्याधार्थ यह सम्बन्ध माछ है। शत्रुमण्डली के
बीच से गान्धार राज्य के रचा के लिए किसी पराक्रमी राजवंश के
साथ सम्बन्ध करना उचित है। इस पर महाराज ने ध्रन्त में
सम्मति दे दी। सब वातें ठीक हो गईं।"

गान्यारी—"सखी ! यदि यही है, तो इससे बढ़कर मेरे सीमाग्य की बात खीर क्या होगी ? गान्यार राज्य के मङ्गलार्थ विवाह की कीन बात, मैं अपना प्राग्य तक देने में कभी कुण्ठित नहीं हो सकती।"

सखी—"तुम नहीं समकती हो, चली, हम तुम दोनी रानी के पास चलें। मैं उनसे कहूँगी, इस विवाह में मेरी सखी की राय नहीं होती। तुम्हारी राय नहीं ने से वे कभी विचार नहेंगी। जब उनका विचार नहेंगा तब महाराज को भी हार कर अपनी राय बदलनी पड़ेगी। तुम ज़रा भी इसमें संकोच न करें। अब भी समय है। चलो, शीव चलो, मैं तुम्हें अपने साथ ले चलती हूँ।"

गान्धारी.—''सखी! हुम अवीध की तरह वात करती हो। पिता जब मेरे व्याह की वात खिर कर चुके हैं, जब वे मेरे दान का संकल्प कर जुके हैं तब मैं अपने को बाग्दत्ता सममती हूँ। अब मेरे पित अन्य हों, या बधिर हों, इसमें मेरा क्या हानि-लाभ। देवता की मूर्ति मिट्टी की हो या सोने की, मक्तों के निकट दोनों बराबर हैं। मक्त उसमें देवल आरोपख करके पूजा करते हैं और मुक्ति पाते हैं। मैं श्रपने खामी में ईश्वरभाव का श्रविष्ठान करके उनकी सेवा कहाँगी। उसी से मेरा परम कल्याण होगा।"

सावी---"धर्मज्ञान से तुम जो कहो, किन्तु श्रन्थपति की क्या तुम हृदय से प्यार कर सकोगी ?"

गान्धारी—"क्यों न कर सकूँगी ? उनकी अञ्जूहीनता यदि मेरे मन में खेद उत्पन्न करेगी तो में उसका प्रतीकार करूँगी ! उनका अन्धापन जिसमें में न देख सकूँगी, उसका उपाय मैंने सीच रक्खा है । जिस दिन में पिता के मुख से अपने इस ज्याह की बात सुन्ँगी उसी दिन में अपनी आंखों पर कपड़े की पट्टी चढ़ा लूँगी ! इससे वे सुन्दर हैं या कुरूप नेत्रवान हैं या नेत्रहीन यह मैं न देख सकूँगी ! यदि मेरे खासी सुक्तों विना देखे सुक्त पर प्रेमप्रकाश करके धर्मपत्नी बनावेंगे तो मैं उनको न देख कर उन्हें स्नेहपूर्वक क्यों न पित बनाऊँगी ?"

सस्वी—''मैंने तुमसे द्वार मानी । मैं साधारण मतुष्य हूँ, मनुष्य की तरह वात कहती हूँ । तुम देवी हो, देवी की तरह बात करती हो । भगवान करे, तुम जो इतने दिन से भगवान की पूजा करती हो वह सफल हो । तुम दोनों पित-पत्नी में उन्हीं का सा प्रेमभाव उत्पन्न हो । मैं जाती हूँ, महारानी की आज्ञा से मैं तुम्हारे मन का भाव धूमने छाई थी।"

कुछ दिन के अनन्तर गान्धारी का व्याह कुरुवंश के राज-कुमार धृतराष्ट्र के साथ हो गया । पिता का वागदान होते ही गान्धारी ने कपड़े से अपनी दोनों आँखें बांध लीं और उसी तरह हस्तिनापुर गई। धृतराष्ट्र जन्मान्ध होने के कारण गान्धारी को न देख सको। गान्धारी भी श्रांख पर पट्टी बांध होने के कारण घृतराष्ट्र को न देख सकी। किन्तु हृदय के नेत्र से देानों ने देानों को देखा। देानों प्रेम के रंग में रॅंग गये श्रीर प्रीतिपूर्वक सांसारिक धर्म का पालन करने हारो।

राजकुमारी की सुशीलता और सद्ब्यवहार देख कर पुरवासी लोग सब उसे हृदय से प्यार करने लगे । "पातित्रत्य धर्म में वह सीता और सावित्री के बराबर धी" उसके पातित्रत्य का यश देश-देशान्तर में फैल गया।

यथासमय गान्धारी के गर्भ से दुर्योधन श्रीर दु:शासन श्रादि श्रनेक पुत्र क्रमशः उत्पन्न हुए। उन लोगों की कथा कहने के पूर्व-प्रसंगानुसार हम दे। एक वात यहां उल्लेख करके श्रागे वहेंगे । लोग कहा करते हैं कि सुमावा के पेट से सुपुत्र ही जन्म लेता है। यह वात सामान्यतः सत्य होने पर भी सब जगह चरितार्थ नहीं होती । पुराण को बात जाने दीजिए । इतिहास ही की बात लीजिए। इन्दौर के होलकर वंश की प्रसिद्ध रानी ग्रहिल्यावाई का नाम कैंान नहीं जानता । उनको सी धर्मशीला, श्रीर दयावती स्त्री संसार में वहुत कम पैदा हुई हैं। उनके चरित्र के लेखक लिखते हैं, ''मनुष्य से लेकर चींटी पर्यन्त सभी जीवें। पर उनकी दया रहती थी। वे प्रति दिन साधु-महात्माओं को भोजन देती थीं श्रीर पर्व-सौहार पर या किसी विशेष उत्सव के दिन कंगालों की भ्रत्रदान देती थाँ। भ्रत्रदान के समय वे जाति का विचार न करती थीं। चण्डाल ग्रीर मुसलमान श्रादि को कोई भूखा उनके यहाँ ह्या जाता या उसे स्रवश्य भीजन देती र्थो । जाड़े में दीन दुस्तियों श्रीर वृहों को जाड़े का कपड़ा देती थीं ।

गरमी के दिनों में प्यासे पश्चिकजनों की पानी पिलाने के लिए राज-

मार्ग के किनारे जगह जगह पर कितने ही लोगों की नियुक्त करती थीं। वे कभी कभी श्रपनी राजधानी को छोड कर नर्मदा के किनारे माहेश्वर नामक एक बस्ती में जाकर रहती थीं। वहाँ के किसान जब तब देखते थे कि उनके थके बैलों तथा भैंसी की रानी के नौकर पानी पिला रहे हैं, श्रीर घास काट कर खिला रहे हैं। श्रहिल्याबाई ऐसी दयालुर्थी कि कितने ही श्रनाज लगे हुए खेत पत्तियों के लिए छोड़ देती थीं। दूर दूर से भुज्ड के भुज्ड पची आकर वहाँ न्नाश्रय **होते थे श्रीर बड़ी निर्मयता के साथ दाना** चुगते थे । मछलियों को लिए वह नर्म्मदा को जल में सत्तु और गेहूँ का अटा दलवाती थीं। जब वे सुनती थीं कि उनके किसी आश्रित या कर्म्मचारी के घर सन्तान पैदा हुई है तब वे उस बच्चे को दूध पिलाने के लिए एक दुधार गाय भेज देती थीं। तीर्थयात्रा के समय वे अनेक प्रकार के फलों के बीज अपने साथ ले जाती थीं। जिस मैदान में, जिस नदी और सहकों के किनारे पेड़ नहीं देखती थीं वहाँ वे अपने हाथ से उन उपयुक्त बीजों को रोपती थीं। जब उनसे कोई पूछता था कि आप ऐसा क्यों करती हैं तब वे कहती थीं कि इन रोपे हुए बीजों में सब न होकर यदि दे। चार भी लगजायँगे ते। समय पाकर

ठंडे होंगे, भूखे लोग उनके फल खाकर ध्रपनी घात्मा को छप्त करेंगे ग्रीर पिचगण उनकी डालियों में घोसले बना कर रहेंगे। इससे संसार का कुछ न कुछ उपकार होहीगा, मेरा उद्देश्य विफल न होगा।" श्रहा! क्या ही सुन्दर ग्रीर क्या ही पवित्र माव है! जिस देश में

वे अवश्य फूलें फलेंगे। यके हुए पश्चिक उनकी छाया में बैठकर

ऐसी क्यामयी की जन्म लेती हैं वह देश धन्य हैं! भारतवर्ष की पुराखे-ज्ञिखित पतित्रवाओं की कथा केवल कविकल्पना ही नहीं हैं, ऋहिल्या के सहश धर्मशीला खियों के चरित्र से वह प्रमाणित हो सकती हैं।

इस दयामयी श्रिहिस्या के गर्भ से जो सन्तान उत्पन्न हुई घी, एक बार उसके स्थाव की भी श्रालोचना कीजिए। श्रिहिस्यावाई श्राठारह वर्ष की उन्न में विधवा हो गई। विधवा होने के कुछ ही दिन पूर्व उनके एक वेटा हुआ जिसका नाम मालीराव रक्खा गया। वह वालपन से ही विगड़ चला। उसकी चित्तवृत्ति वरावर बुर कामों की श्रीर लगी रहती थी। श्रनाचारी वालकों के साथ मदापान करते करते वह एकदम ज्ञानशून्य हो गया। उसे अपने हिताहित की युद्धि प्राय: लुप्त सी हो गई। नशे की हालत में वह कभी कभी ऊँचे दर्ज के नौकरों को भी वेंत से पीटता था श्रीर नौकरों के हारा उन्हें अपमानित करता था।

विधवा धोने पर ब्रहिस्या ने सव सुख त्याग कर ब्राह्मण साधुओं की सेवा में अपना जीवन समर्पण कर दिया था। मालीराव माता के इस धर्माचरण में सहानुभृति प्रकट करना दूर रहा, भांति भांति की विध्रवाधार्ये डालता था। ब्रहिस्यावाई साधु, संस्थासी ब्रीट ब्राह्मणों को देवता की तरह भक्ति करती था, मालीराव उनको देवी दृष्टि से देखता था। माता के भक्तिपात्रों को निकालने के लिए वह नित्य नया नया उपाय रचता था। वह ऐसा दुष्ट था कि कभी कपड़े या जूते के भीतर विच्छू को छिपा कर ब्राह्मणों को पहनने के लिए देता था। कभी तामे या पीतल के धड़े में रुपये भर कर ब्रीट उसके भीतर एक विषयर सांप रखकर ब्राह्मण श्रीर साधुओं को उसमें उसके भीतर एक विषयर सांप रखकर ब्राह्मण श्रीर साधुओं को उसमें

से यथेच्छ रुपया लेने का ग्रादेश देता था। रुपया निकालते समय जब उन निरपराधियों के हाथ में सांप डँसता था तब उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती थी। पुत्र के ऐसे कूर व्यवहार से श्रहिल्या का कोमल हृदय निदीर्श होता था। वे पुत्र के दुराचार से दिन रात रोया करतीं स्नार सताये व्यक्तियों को यथेष्ट पुरस्कार देकर सान्त्वना बाक्यों से उन्हें सन्तुष्ट करने का यत्न करती थीं। अहिल्या जैसी धर्मशीला के गर्भ से जब मालीराव जैसा क्रुपुत उत्पन्न हुआ, तब गान्धारी के गर्भ से दुर्योधन ग्रादि क्रुपुत्रों का जन्म होना ग्रस्ता-भाविक नहीं समभा जा सकता। अब हम प्रकृत विषय का उल्लेख करते हैं। राजा धृतराष्ट्र के छोटे भाई का नाम पाण्डु था। उनके पहली पत्नी कुन्ती के गर्भ से युधिष्ठिर, भीम श्रीर श्रर्जुन तथा दूसरी स्त्री माद्री के गर्भ से नकुल श्रीर सहदेव दे पुत्र उत्पन्न हुए थे। पाण्डु के पुत्र होने के कारण वे पाँचीं भाई पाण्डव के नाम से विख्यात हुए।

पाण्डु का देहान्त होने पर उनकी छोटी पत्नी माद्री उनके साथ सती हो गई। कुन्ती अपने और सौतेले बेटों को साथ ले हस्तिना-पुर धृतराष्ट्र के आश्रय में रहने लगी। गान्धारी और धृतराष्ट्र पाण्डु के बेटों को अपने पुत्र की माँति प्यार करते थे। पाण्डव पाँचों माई बाहुबल और बुद्धि में दुर्योधनादिकों से बढ़े थे, इसलिए प्रजागा उन पर अधिक अनुराग रखते थे और उनकी प्रशंसा करते थे। यह दुर्योधन को बहुत बुरा लगता था। धृतराष्ट्र व्यष्ट होने पर भी जन्मान्थ थे, इसलिए उनका राज्य पाने का अधिकार न था। यह पाण्डु जीते होते तो वही राज्य करते, इस कारण बहुतेरी

प्रजायें कहती थीं कि पाण्डु के बेटे ही राज्य के सचे श्रम्धिकारी हैं। ''इससे दुर्योधन का क्रोध पाण्डवें। पर खीर भी वढ़ गया था। वाल्यकाल से ही उसकी क्रूर बुद्धि शकुनि मामा की तरह परिवर्द्धित द्वी चली थी। किस तरह पाण्डवीं की मार कर वह निष्कण्टक होगा, सदा इसी चिन्ता में हूवा रहता घा। पाण्डवें में भीम वहे वलिष्ठ ये और गदायुद्ध में हुर्योधन के प्रतिदृन्द्वी थे, इसलिए सवेर्ष की ग्रपेचा भीम पर उसका विशेष दंश था। एक बार उसने ग्राप्त-रीति से मिठाई में दिप मिला कर भीम को खिला दिया था। किन्तु ईश्वर की कृपा से भीम वच गये। इसी तरह एक बार उसने गन्यक, और वी इत्यादि के योग से एक लाचागृह बनवा, कपट-कीशल से पाण्डवें को उसमें ठहरा कर द्याग लगना दी थी। विशेष कर लाह के संयोग से वह वर बना था, इसलिए वह लाकागृह के नाम से प्रसिद्ध हुआ। भाग्यवशात् दुर्योधन के बुरे भाशय की ख़बर पाकर वे लोग उस लाचागृह में आग लगने के पूर्व ही भाग कर श्रवने प्रात्त वचा सके। गान्धारी या धृतराष्ट्र पुत्र के कुल्यवहार के सम्बन्ध में पहले कुछ न जानते थे। पीछे जब उन्हें पुत्र के दुराचार की ख़बर लगी तब वे कभी उसे मीठी वाती से समभावे थे, कभी क्रोध कर डॉट डपट बतावे थे, कभी उसकी भर्त्सना करते थे, परन्तु इससे कुछ फल न होता था। ज्यों ज्यों समय वीतने लगा त्यों त्यों दुर्योधन का क्रोध पाण्डवेां पर वढ़ने लगा।

धनुर्विद्या में अर्जुन संसार भर में अप्रगण्य थे। वायविद्या में उनका मुकावला करने वाला उस समय कोई न था। उनका लच्य कभी व्यर्थ न होता था। लाचागृह से भाग निकलने के बाद पाण्डवें।

ने सुना कि पाश्चाल देश के राजा द्रुपद ने अपनी कन्या के ब्याह को लिए एक महासंभा करके इस बात की सर्वत्र घोषणा की है कि इस महासभा में आये हुए व्यक्तियों में जो नीचे रक्खे हुए पानी में लत्त्य का प्रतिविग्व देख कर लत्त्य वेधेगा वही उनकी परम-सुन्दरी द्रौपदी के पाने का श्रधिकारी होगा।" यह संवाद सुन कर पाण्डव-गण भेस बदल कर हुपद की सभा में उपस्थित हुए। उस समय प्रधान प्रधान राजा महाराजा और वीरगण सभी सभा में बैठे थे, किन्तु उन सबों में कोई लच्य बेधने में समर्थ न हुआ। अन्त में ब्राह्मस-वेषधारी ब्रर्जुन ने लच्य भेद करके द्रौपदी का लाभ किया। जो काम चत्रिय वीरगण न कर सके उसे एक साधारण ब्राह्मण ने कर डाला । यह देख आगत राजा सब क्रुद्ध हो ऋर्जुन के साथ युद्ध करने की ख़बत हुए। किन्तु भीम और अर्जुन के बाहुबल के आगे कोई ठहर न सका। सब ने परास्त हो अपने अपने घर का रास्ता लिया। इधर लच्य वेधने वाले का श्रसली परिचय पाकर राजा द्रुपद के आनन्द की सीमा न रही। अर्जुन राजाओं की हरा कर द्रीपदीं की साथ ले मां के पास ग्राये और कहा—"मां! मैं एक ° स्रपूर्व बस्तु लाया हूँ।" कुन्ती ने समक्ता कि कोई खाने की वस्त् लाया होगा। इस कारण उसने कहा-"'पाँचों भाई बाँट लो।" • माता की ब्राज्ञा कैसे टाली जा सकती थी, पाँचों भाई पाण्डवें ने ्रद्रौपदी के साथ ज्याह किया।

पाण्डव आग में जल कर सर गये, यह बात सर्वत्र ख्यात हो गई थी, किन्तु इस समय जनके जीवित रहने और पाञ्चाल देश के राजा की वेटी द्रौपदीः के साथ व्याह करने की बात सुन कर

श्रादर से इस्तिनापुर में वृताया श्रीर मविष्य में जिससे द्वर्योधनादि के साथ उनका कलह न वहें इस कारण राज्य वांट दिया। दुर्यी-धन पुरानी राजधानी इस्तिनापुर में ही रहे। पाण्डवें ने इन्द्रप्रस्थ नाम की नई राजधानी स्थापित की । गहुतेरे लोगों का अनुमान है कि पश्चिमोत्तर प्रदेश की प्रसिद्ध नगरी दिल्ली ही किसी समय इन्द्रप्रस्य के नाम से निष्नात या। दिल्ली का एक श्रंश श्रव भी इन्द्रप्रस्य शब्द का श्रपभ्रंश ''इन्दरपयः' के नाम से पुकारा जाता है।

पाण्डव नई राजधानी बसा कर उसकी शोभा धीर समृद्धि बढ़ाने की चेष्टा करने लगे । उन्होंने शहर के चारों श्रीर ख़ुब मज़वूत किला बनवाया धीर गहरी खाई ख़ुदवा कर शबुद्धों के श्राक्रमण के भय से निश्चिन्त हुए। श्रच्छी श्रच्छी सड़कें वनवाईं, जिनके दोनों किनारे पेड़ लगवाये। सुन्दर वाग् श्रीर निर्मल जल से भरे हुए सरोवर नगर की शोभा बढ़ाने लगे । यह वहे विशाल भवन, देवमन्दिर, वाज़ार श्रीर धर्मशाला श्रादि स्थापित होने से राजधानी की शोभा वहुत वढ़ गई। पाण्डवेां के सद्व्यवहार से प्रसन्न होकर देश-देशान्तर के व्यवसायी लोग वहाँ ब्राकर रहने लगे। थोड़े ही दिनों .में इन्द्रप्रस्थ ने अपनी शोभा और समृद्धि में इस्तिनापुर को जीत लिया।

पाण्डवें के वैरी दुर्शेधन को यह सहर न हुआ। वह पाण्डवें की उन्नति देख कर मन ही मन जलने लगा। इससे भी वढ़ कर उसके मन में भारी विद्वेष पैदा करने वाली यह बात हुई िक पाण्डव पास के राजाओं को जीत कर राजासूय यह करने को ज्यात हुए । अद्वितीय, परम प्रभावशाली सार्व-मीम राजा को छोड़ कोई राजासूय यह का अनुष्ठान नहीं कर सकता । इससे अन्यान्य राजाओं को अपनी हार खीकार कर यहकर्ता की अपीनता खीकार करनी पहती है । भीम और अर्जुन ने अपने बाहुबल से युद्ध में सब राजाओं को पराजित किया। दुर्चीधन इच्छा न रहते भी कुलश्रेष्ठ जान कर युधिष्ठर की प्रधानता खीकार करने को बाध्य हुआ। । किन्तु लोग जितनी ही पाण्डवों के बल-पराक्रम की वहाई करने लगे जतनी ही दुर्योधन की मार्मिक पीड़ा बढ़ने लगी। किस तरह पाण्डवों का सर्वनाश होगा, वह इसकी चिन्ता करने लगा।

गान्धार देश का राजकुमार शकुनि बहुत दिनों से इस्तिनापुर में था। एक तो वह दुर्योधन का अत्यन्त समीपस्थ सम्बन्धी था, दूसरे दोनों का ख्याव परस्पर मिला जुला था, इसिलए दोनों में बड़ी मैत्री था। दोनों एक साथ सलाह विचार करके कोई काम करते थे। साधुओं से अच्छी और दुर्जनों से बुरी ही सलाह मिलती है। शकुनि दुर्योधन को अपने दु:स्वभाव के अनुसार बुरा ही विचार दिया करता था। 'वाहुवल से पाण्डवें का जीतना सहज नहीं है इसिलए कपट कोशल से पाण्डवें का सर्वनास करना चाहिए', यह दोनों ने पक्का विचार किया। उन दिनों राजओं को यह एक रीति थी कि जो कोई उन्हें लड़ने या जुआ खेलने के लिए बुलाता तो वे इनकार न करते थे। इनकार करने से लोग उन्हें कायर सममते थे। जुना खेलने में शकुनि बड़ा ही प्रवीय

था। निश्चय हुआ। कि श्रक्ति दुर्योधन की श्रीर बाज़ी लगा कर जुवा सेलेगा श्रीर जुवे में युधिष्ठिर की हरा कर उनका सर्वस्व हरण कर लेगा।"

दुर्योधन के धनुरोध से धृतराष्ट्र ने पाण्डवें को इस्तिनापुर युलाकर जुजा खेलने की ग्राझा दी। जुजा बहुत युरा खेल है, यह जान कर भी उस समय की प्रचलित प्रयाके प्रनुसार तथा चचा के धनुरोध से युधिष्टिर जुद्रा खेलने में प्रवृत्त हुए। शकुनि उनकी अपेचा जुवा खेलने में निपुण घा, इसलिए वह जीतने लगा और युधिष्ठिर प्रतिवार हारने लगे । युधिष्ठिर क्रमशः जुनै में धनरत्न, भूपस, हाथी, घेड़ि, रघ, कोशागार, यहां तक कि भाई ग्रीर द्रीपदी पर्यन्त की हार गये। पीछे उन्होंने श्रपने ही की वाज़ी रक्खा, उस दफ़ें भी शकुनि ही की जीत हुई। दुर्वोधन श्रीर उसके भाई युधिष्टिर की पराजित देख नाना प्रकार के मर्मभेदी उपहास-वाक्यों से उनका जी दुखाने लगे । दुर्योधनं की श्राज्ञा से उसका पापिष्ट भाई द्र:शासन द्रीपदी को अन्त:पुर से केश पकड़ कर ले ऋाया श्रीर भरी सभा में उसके वदन पर से वरजेारी कपडा खींचने लगा। सभास्थ थार्मिक गर्हों ने उसके इस कुन्यवहार से मर्माहत होकर सिर नीचा कर लिया। युधिप्टिर तो श्रपनी इच्छा से श्रपने श्रीर द्रीपदी को जुबे में हार चुके थे। किसी के हाथ विके हुए दास श्रीर दासी के ऊपर खामी का सब अधिकार है, यह सोच

कर ने दु:शासन को इस श्रनीति पर कुछ न बोले, चुपचाप बैठे रहे। भारतवर्ष के बढ़े बढ़े सम्झान्त चत्रिय राजा महाराजा भी वस सभा में बैठे थे, परन्तु एक श्रवला को इस प्रकार श्रपमानित होते देख कर किसी ने कुछ न कहा । जान पड़ता है इसी पाप से चित्रयों का प्रकृत महत्त्व ग्रव इस भारत-भूमि से विदा हो कर सात समुद्र के पार चला गया।

जब राजसभा में ये सब बातें हो रही थीं तब गान्थारी महल के भीतर थीं। वे दुर्थोधन के इस अत्याचार की बात सुन कर वड़ी दुखी हुई और तुरन्त उन्होंने सब समाचार धृतराष्ट्र से जाकर कहा। धृतराष्ट्र ने राजसभा में जाकर दुर्योधन को ख़ूब फटकारा और द्रौपदी को भधुर वाक्यों से सान्त्वना देकर दासीत्व-बन्धम से खुड़ा दिया। युधिष्ठिर और उनके भाई, धृतराष्ट्र की कृपा से दासत्व से खुटकारा पाकर इन्द्रमस्य को गये।

दुर्योधन ग्रीर शकुनि ग्रादि दुष्टगर्लो ने हाथ में ग्राये हुए वैरियो की इस प्रकार निकलते देख बड़े दुखी हुए। उनके चीम की सीमा न रही । उन्होंने घृतराष्ट्र के पास जाकर फिर पाण्डवें। को युलाने श्रीर उनको जुवा खेलने के लिए श्राज्ञा देने के निमित्त प्रार्थना की । स्वभावतः धर्मभीरु श्रीर पाण्डवीं के प्रति स्तेहपरायण होने पर भी धृतराष्ट्र ने हृदय की दुर्वलता के कारण उनकी प्रार्थना स्वीकार करके युधिष्ठिर को फिर जुवा खेलने के लिए बुलाया। यह जान कर गान्धारी की मर्मान्तिक पीड़ा हुई। पतिभक्तिपरायगा द्वीकर भी उसने स्वामी की इस प्रकार पापकर्म में सहायता करते देख वह श्रयन्त दुखी होकर पति के पास जाकर वोली---"महा-राज, यह ब्राप क्या कर रहे हैं ? पुत्रस्तेह से विचारशून्य होकर म्राप कुलचयकारी कार्य में क्यों प्रवृत्त हुए हैं ? दुर्योधन हमारे वश में अलकुठार उत्पन्न हुआ है। उसकी बात में पढ़ कर आप

अपना अनिष्ट न करें। पुत्र ही को पिता की बात माननी चाहिए। यही शास्त्र की आज्ञा है। तो आप उसकी बात क्यों सुनते हैं? यदि आप मेरा कहा माने तो दुर्योधन को लाग दें, नहीं तो मारी विपद खड़ी होगी।"

धर्मपयदर्शिती सहधिर्मिशी की बाद सुन कर धृतराष्ट्र बोले— "प्रिये ! यदि विधादा की वहीं करना होगा तो उसे कैंगन रोक सकेगा । मावी को कोई मिटा नहीं सकता । दुर्योधनादिक जो चाहें करें, पाण्डवें के साथ फिर उनकी जुनेबाज़ी चले ।"

धृतराष्ट्र की आहा से फिर जुवा आरम्भ हुआ। दुए शकुिन ने शुविधिर के निकट यह प्रस्ताव किया कि इस बार जुवे में हम आपसे हारें तो शृगछाला पहन कर हम बारह वर्ष वनवास और एक वर्ष ब्रह्मातवास करेंगे। अगर हम जीतेंगे तो द्रीपदी सिहत आप पाँचों माइयों की उसी तरह तरह वर्ष विताना होगा। तरह वर्ष बीतने पर फिर आप अपना राज्य पाँचेंगे। आहए, हम आप यही बाज़ी रखकर इस बार जुवा खेलें।

समास्य सब लोग इस भयङ्कर बाज़ी की बात सुनकर बहुत दुखी हुए; किन्तु युविष्ठिर महाराज लोकलज्जा में पड़कर उस पख को स्वीकार कर जुवा खेलने लगे।

इस बार भी शकुनि ही की जीत हुई। पाण्डवमण पूर्व प्रतिक्षा के अनुसार राजकीय चल्ल और अक्त-राख परित्याग कर मृगचर्म्म पहन संन्यासी की भाँति सम्पूर्ण शरीर में अस्म लगा कर जङ्गल को रवाना हुए। पतित्रता द्रौपदी भी उनके साथ गई। दुर्योधन और उसके और भाई पाण्डवों को उस अवस्था में देखकर उनका तीव्र डपहास करने लगे । यह देखकर हस्तिनापुरवासी समभ गये कि दुर्वोधन ने अपनी दुर्वृद्धि से जे। विरोध रूपी आग जलाई है उससे कुरुवंश शीघ्र ही जल कर भस्म होगा ।

तेरह वर्ष वीत जाने पर पाण्डव अपनी राजधानी को लौट श्राये श्रीर पूर्व प्रतिज्ञा के श्रनुसार फिर श्रपना राज्याश पाने के लिए श्रीकृष्ण को दूत रूप में इस्तिनापुर भेजा। किन्तु दुर्योधन ने .''सुच्यमं नैव दास्मामि विना युद्धेन केशव" श्रर्थात् विना युद्ध के सुई के श्रप्रभाग बराबर भी भूमिन टूँगा प्रतिज्ञा की। यह सुनकर धृतराष्ट्र ने गान्धारी को श्रन्त:पुर से सभा में बुला कर दुराचारी पुत्र को उपदेश देने कहा। मारे खेद श्रीर कोध के गान्धारी के सुँह से कोई शब्द न निकलता था। उन्होंने दुर्योधन से कुछ कहने के पूर्व स्वामी से कहा—''महाराज ! यह जो भारी टंटा खड़ा हुआ है, इसके लिए ग्राप ही पूरे बदनाम होंगे। ग्राप दुर्योधन का दुष्टाशय जान कर भी उसके मतानुसार चलते हैं। दुर्योधन क्रोध और लोभ के ऐसा वशीभृत हो रहा है कि ग्राप उसे श्रव बलपूर्वक भी दबाना चाहेंगे तें। वह न दवेगा । मूर्ख श्रीर दुरात्मा के हाथ में राज्य का भार देने से जो फल होता है वह श्राप इस समय भीग रहे हैं।"

इसके अनन्तर हुयोंधन से कहा— ''मैं तुम्हारे भविष्य कल्याख के लिए जो बात तुमसे कहती हूँ, वह तुम ध्यान देकर सुनो । तुम्हारे पिता और भीष्म, द्रोबाचार्य आदि धार्मिक व्यक्तियों ने जो कुछ तुमसे कहा है, डसका तुम पालन करो । न्यायपूर्वक कार्ये ब ने से तुम सुखी होने । यह तुम निश्चय जानो । अजितेन्द्रिय, विषयज्ञेल्लिप मनुष्य कभी चिरकाल तक राज्य नहीं मेाग सकता। ज्ञी मनुष्य न्यायी श्रीर सदाचारी है वही सुख-खच्छन्दता-पूर्वक राज्य भोगता है।

वत्स ! खरं श्रीकृष्ण पाण्डवों के दूत वनकर तुम्हारे यहाँ श्राये हैं। तुम उनकी बात मान लो। उनके प्रसन्न होने से तुम्हारे दोनों दलों का कल्याया होगा। तुम्हारे पिता श्रीर भीष्माचार्य श्रांदि धार्मिक व्यक्ति विरोध से डर कर पाण्डवों के राज्य का उचित ग्रंश देने को सम्मत हैं। राज्य का आधा हिस्सा तुम लोगों के लिए काफ़ी है। तुमने जो तेरह वर्ष तक पाण्डवों की इतनी दुर्दशा की है, उस पर खेद प्रकाश करना ग्रीर उन्हें सुखी करना तुम्हारा परम कर्चव्य है। तुमने ग्रपनी भूल से जी यह समभ रक्खा है कि भीष्म श्रीर द्रोखाचार्य खादि वीरगण तुम्हारे लिए प्राग्रपण से युद्ध करेंगे, यह कभी न होगा । क्योंकि वे लोग जानते हैं कि इस राज्य पर तुम्हारा श्रीर पाण्डवें का समान अधिकार है। यह जान कर ही वे लोग तम दोनों पर वरावर स्नेह-भाव रखते हैं। उन लोगों को पूरा विश्वास है कि पाण्डव तुम सबों की अपेचा विशेष धर्मात्मा हैं। मान लो, तुम्हारे श्रन्न से प्रतिपालित होने के कारण वे लोग तुम्हारी ब्रोर से लड़कर युद्ध में मर मिटेंगे; पर ते भी धार्मिक युधिष्ठिर के ऊपर वे कदापि अखप्रहार न करेंगे। बेटे ! लोमान्य मनुष्य कमी इप्टसिद्धि को प्राप्त नहीं है। सकते । तुम लोम त्याग कर शान्त भाव धारण करे।"

पत्थर पर बीज नहीं जसते । दुर्योधन के कठोर हृदय पर माता
 का उपदेश न लगा । उसने माता के सदुपदेश पर ध्यान न दिया ।

वह अपने संकल्प पर अचल बना रहा। जब लोगों का बुरा दिन श्राता है तब वे हित की बात नहीं सुनते। दुर्योधन से सब लोग कह कर यक गये पर उसने किसी की बात न मानी। युद्ध, किसी के रेकि न रुका। दोनों पच अपने बन्धु-बान्धव श्रीर चतुरङ्गियी सेना साथ ले घेार संप्राम करने को उद्यत हुए। दावाग्नि से जिस तरह घना जङ्गल जल कर भस्म हो जाता है उसी तरह ब्रटारह दिन की भयानक लड़ाई में कैरिव ग्रीर पाण्डवों की श्रसंख्य सेना लड़ कर कट गरी । कितने ही सुकुमार राजकुमार कितने ही बलिष्ट युवा और कितने ही बूढ़े वीर उस समराग्नि में जल मरे। पुत्रहीना माता और पितहीना क्षियों के आर्चनाद से अन्त:पुर भर गया। चारों स्रोर हाहाकार मच गया। दृत प्रतिदिन युद्ध की घटना गान्धारी श्रीर धृतराष्ट्र के पास स्राकर विस्तारपूर्वक वर्णन कर कहता था—"म्राज की लड़ाई में स्रापके पात्र मारे गये," "म्राज आपकी एक मात्र वेटी विधवा हो गई।[;] ''आज आपके पुत्र का हृदय फाड़ करके भीम ने उसका क्षिर पान किया।" इस प्रकार रोज़ रोज़ की ख़बर गान्धारी के पास पहुँचने लगी। युद्ध का परि-गाम ऐसा ही होगा, यह बात वह पहले ही से जानती थी, इस लिए वह इन शोकसंबादों को सुनने के लिए हृदय को टढ़ किये थी। किन्तु धर्मज्ञान से धैर्य्य धारण करने पर भी पुत्रस्तेह के निकट धीरता, सहिष्णुता श्रादि सभी गुण छुप्त हो जाते हैं। परन्तु उस अवस्था में भी उनके अधार्मिक पुत्र विजयी हो, यह भावना कभी उनके मन में उत्पन्न न हुई। उनके पुत्रों की बुद्धि अच्छी हो, वे धर्मपरायण हों, यही वे ईश्वर से निस प्रार्थना करती थीं।

जब रण्भूमि में जाने के पूर्व उनके वेटे उन्हें प्रणाम करके विदा माँगने स्थाते थे तब वे यही कहती थीं—''बेटे ! यती धर्मस्तती जयः।'' जहाँ धर्म वहीं जय। यहाँ गान्धारी की धर्मपरायणता विशेष प्रशंसतीय है।

युद्ध समाप्त हुम्रा । पाण्डव पाँचीं भाई वच गये । किन्तु उनके पुत्र, श्रीर कितने ही श्रात्मीय वन्धु-वान्धवगण मारे गये। दुर्यीधन म्रादि सा भाई युद्ध में हत हुए। दोनों दलों की ग्रसंख्य सेनायें हत हुई'। युद्धचेत्र में रक्त की धारा वह चली। सारी रख-भूमि रूण्ड-मुण्डमयी हो गई। उस युद्ध-श्रत के भयानक दृश्य का वर्णन नहीं हो सकता। युद्ध करना राचस का कार्य्य है। इसलिए उस श्रमुर कार्य में पड़कर कोई धर्मानुसार चलना चाहेगा, यह नहीं हो सकता। बहुत वच कर चलने पर भी कुछ न कुछ श्रधर्म हो ही जाता है। इसलिए पाण्डवगर्यों ने खभावत: धर्मभीरु होने पर भी युद्ध में प्रवृत्त होकर किसी किसी स्थल में लाचारी अधर्म का आश्रय लिया था। उन्होंने कपट-युद्ध में कीरवदल के प्रधान प्रधान वीर पुरुषों को श्रीर कुरुराज दुर्योधन को मारा घा । पाण्डवेां के कप-टाचार की बात सुनकर गान्धारी की मर्मान्तिक कप्ट हुआ। उन्होंने अधर्माचरण के कारण पाण्डवों पर क्रोध प्रकाश करके उन्हें धिकारा। किन्तु जब उनको यह ज्ञात हुआ कि उनके पुत्र ही सब भ्रनर्थ के मूल थे, पहले वहीं कपटयुद्ध में प्रवृत्त हुए थे तब वे कोध त्याग कर पाण्डवों को पूर्ववत् स्तेह-भरी दृष्टि से देखने लगीं।

गान्धारी ने विवाह होने के पूर्व ही से अपनी आँख पर पट्टी बाँघ ली थी। पुत्र-कन्या के जन्म होने पर मी उन्होंने पट्टी खोल सुख से विञ्चत किया या उस सुख से वे आप भी विश्वत हो।

का काम किया था। किन्तु सच्ची बात यह है कि उन्हीं के बुद्धि-कैौशल से पाण्डवों ने विजयलाम किया । गान्धारी यह बात जानती थी। इसलिए पाण्डवों से कुछ न कह कर उन्होंने श्रीकृष्णजी के निकट श्रपनी मर्मवेदना प्रकट की। रणचेत्र का दृश्य ग्रह्मन्त भयङ्कर था ! ग्रह्मन्त मर्मभेदी था ! चारों ग्रेगर ग्रसंख्य हताहत सेनाग्रेग की लाशें पड़ी थीं । किसी का ग्रङ्ग दो दुकड़ा होकर कटा था; किसी के हाथ पैर कटे थे: किसी का सिर धड़ से अलग पड़ा था; कितने ही हतभाग्य तब भी जीते हुए छंटपटा रहे थे। उनमें कोई मारे यन्त्रणा के चिछा रहा था, कोई मारे प्यास के "पानी, पानी" कह कर कराह रहा था, कोई माँ, बाप, स्त्री और बेटे की बात याद करके रें। रहा था। सैनिकों की लाश के साथ साथ मरे हुए घाड़े हाथियों के शरीर जहाँ तहाँ टीले की तरह गड़े थे। कहीं कहीं लहू की कीचड़ मच गई थी,

वे झाँख की पट्टी खोल कर विधवा बेटी श्रीर पतोहुग्री को साथ ` ले युद्धक्तेत्र देखने गईं । श्रीकृष्ण श्रीर युधिष्ठिर-प्रभृति श्रनेक व्यक्ति उनके साथ गये । श्रीफुब्याचन्द्र ने कुरु-पाण्डव के युद्ध में ख़र्य श्रक्ष-धारण न किया था । उन्होंने केवल श्रर्जुन के सारिष्ट

रहीं। किन्तु युद्ध समाप्त होने पर उन्होंने एक वार मृत पुत्रों की देखनाचाहा। वह दश्य सुख का नहीं था, ग्रांख रहते भी जे। दृश्य उनके पति न देख सकते, जो दृश्य उनके पति के सुखानुभव का विषय न था, उसका देखना उन्होंने बुरा न समभा। इसलिए

विकट दुर्गन्ध त्राता या कि उस जगह किसका सामर्थ्य जो चग भर भी खड़ा रह सके। भुज्ड के भुज्ड मांसभत्ती पशु-पत्ती रण-चेत्र में श्राकर उल्लास से मुदों का मांस नीच नीच कर खा रहे थे। समरशायी वीर-गर्शों के ग्रस्त शस्त्र जहाँ तहाँ विखरे पड़े थे। टूटे हुए रथें। की श्रधिकता से रए-भूमि का मार्ग मिलना कठिन था। गान्धारी ने एक बार चारों ग्रीर देखा, एक दासी उनके मृत-व्यक्तियों थ्रीर उनकी अनुगामिनी क्रुरुनारियों का परिचय देने लगी। रण-भूमि का वह भयानक दृश्य देखकर गान्धारी का हृद्य

विदीर्ण हुआ। वे श्रीकृष्ण की पुकार कर वीलीं—''हे कृष्ण ! हाय ! यह देखा, मेरी पताहू सब श्रनाथिनी की भांति खुले केश, रोती हुई, श्रपने श्रपने पति, पुत्र, पिता श्रीर भाई का स्मरण करके उनकी लाश व्याकुल होकर खेाजती फिरती हैं। सारा मैदान पुत्र-हीन माता श्रीर पतिहीना खियां से भरा है। यह देखा, गीध सव वीर प्ररुपों की लोशों को घसीट कर ब्रानन्द से उनका मांस नोच नोच कर सा रहे हैं। जो लोग किसी समय वर्न्दीजनें। के गुँह से ग्रपना सुयरा ग्रीर प्रताप सुनकर पुलकित होते थे वे त्राज शृगालों का भीषण चीत्कार सुन रहे हैं। यह देखे। मेरी पताहुओं के कोमल मुखकमल कुन्हला गये हैं। उनकी आंसू भरी आंखें घूम रही हैं। कितनी ही माँति भाँति के विलाप करके रा रही हैं। कितनी ही बार वार दीर्घनि:श्वास लेकर शोक से अचेत हो पड़ी हैं। कोई पित की लाश की छाती से लिपटा रही है। कोई पित के पैर को आंसुओं से थे। रही है। कोई पति के कटे मूँ ड़ को पाकर उसका शरीर खोज रही है। मैं जिधर देखती हूँ उधर ही अपने बेटे, पाते, भाई ग्रीर भतीजों की लाशें दिखाई देती हैं। जान पड़ता है, मैंने पूर्व जन्म में कोई घोर पाप किया था नहीं तो स्राज सुरूको यह दृश्य क्यों देखना पढ़ता।" इस प्रकार विलाप करते करते गान्धारी वहाँ गई जहाँ दुर्योधन की लाश पड़ी थी। वह उससे लिपट कर "हा पुत्र ! हा दुर्योधन ! कहकर खूब उचस्वर से रोने लगी। पीछे उसने श्रीकृष्ण से कहा—"इस परिवारनाशक युद्ध जारी होने के समय दुर्योधन ने विजय के लिए मुक्तसे श्राशीर्वाद माँगा था।" मैंने कहा—"वत्स ! जहाँ धर्म वहीं जय।" जब तुम युद्ध से मुँह नहीं सोड़ते तब निश्चय है कि तुम वीरगति को प्राप्त होगे। ''यह बात बोलते समय, युद्ध में पुत्र निहत होगा''. इसका ज़रा भी शोक मुभको न हुआ। किन्तु अभी पुत्र-पात्र-बन्धु-बान्धवें। से विहीन महाराज (धृतराष्ट्र) की भविष्य दशा सोच कर मैं शोक से ज्याकुल हो रही हूँ। यह देखे। ! दुर्योधन की स्त्री मेरी बड़ी पतोड़ सिर पीट पीट कर कभी पति का, कभी बेटे का मुँह निहार रही है। मेरा बेटा श्रधर्मी है -इसमें सन्देह नहीं, किन्तु पहले उसने जो कुछ किया हो, युद्ध में उसने चत्रियधर्म का पालन किया। वह अकेला पाण्डवें। के साथ सम्मुख युद्ध में न डरा। यदि शास्त्र सत्य है तो वह अवश्य ही खर्गलोक का अधिकारी होगा।"

भगवान् ! मेरी पतोहुत्रों की दशा देख कर मुक्ते मर्मान्तिक कष्ट हो रहा है। मेरे पुत्र विकर्ष की युवती स्त्री की त्रीर देखेा। वह गिद्ध त्रीर श्रृगाल स्त्रादि दुष्ट जन्तुत्रों के श्राक्रमण से स्त्रामी की देहरत्ता के लिए वारम्वार चेष्टा कर रही है परन्तु किसी तरह कृतकार्य नहीं होती। ग्रहा ! मेरी लाड़ली वेटी हु:शला ग्रपने पति जयद्रथ का मृत शरीर पाकर उसके मस्तक की खोज में उन्मादिनी की भांति इधर उधर दौड़ रही है। माता होकर यह हृदय-विदारक दृश्य देखने से मेरे मन में जो कुछ वेदना हो रही है वह क्या कहकर तुम्हें समम्माऊँ ? हा ! तुम्हारे भागिनेय श्रभिमन्यु की लाश लहू से लयपत्र होकर देखो सामने पड़ी है। मरने पर भी उसके मुँह की शोभा बनी है। हतभागिनी उत्तरा कवच हटा कर उसके वाखिविद्ध शरीर की एकटिष्ट से देख रही है। हाय ! हाय! श्राचार्य की पत्नी कृपी पति-शोक से व्याकुल होकर देखी किस दीन भाव से सिर नीचा किये वैठी है। सामगायकगण आग लाकर विधिपूर्वक श्राचार्य की चिता प्रस्तुत कर रहे हैं। बेटे, पाते, भाई भतीने श्रीर सम्बन्धियों को युद्ध में निहत देख कर मैं श्रव किसी तरह धैर्य धारण नहीं कर सकती। हा दैव ! क्या मुक्तको यही सब दृश्य दिखाने के लिए जिला रक्ता था ?"

गान्धारी इस प्रकार विलाप करते करते मूर्छित हो गिर पड़ी खीर कुछ काल के बाद रिस भरे स्वर में वेाली—''कृष्ण ! मैंने महात्माओं के मुँह से सुना है कि तुम नारायण हो। किन्तु जब तुम नर-रेह धारण करके मतुष्य की मांवि पाप पुण्य का भाग ले रहे हो तब तुमको भी मतुष्य जन्म का सुख-दुख भीगाना पड़ेगा। तुम जैसे शास्त्रक, वाक्यविशारद और पराक्रमी हो; तुम्हारे जितना वाहुबल और युद्धवल है, उससे यदि तुम और भी एक शार निरुद्धल भाव से यह करते ते तुम कुक-पाण्डवों के युद्ध को रोक सकते थे; यह मुक्ते विश्वास होता है। किन्तु तुम उपेना करके

निरचेष्ट थे, युद्ध रोकने का तुमने कुछ विशेष यहा न किया। यहि तुम युद्धनिवारण न कर सके तो किसी पच का महस्य न करना ही तुम्हारे लिए उचित था। तुमने युद्ध में हिश्यार न लिया यह सच है, किन्तु तुम्हारा मन्त्र अस की अपेचा भी सहस्रमुख मर्थकर कार्य कर चुका। मेरे वेटों को अधर्माचारी समम्म कर यदि तुमने उन्हें लाग दिया तो पाण्डवों ने जिस दिन कपट्युद्ध में भीष्म को धराशायी किया था उस दिन उन्हें क्यों नहीं लाग दिया ? अधर्म को आश्रय देना पाप है, उसका फल कुश तुन्हें भी अवश्य भीषाना होगा। तुन्हारे भी वेटे, पोते और वन्नु-वान्धवगण इसी तरह झाति-विवाद से नष्ट होंगे। कुरुवंश की विधवायें आज जिस तरह विलाप कर रही हैं, तुन्हारे कुल की स्त्रियों भी इसी तरह बन्धु-वान्धवों के शोक में पढ़ कर विलाप करेंगी।"

श्रीकृष्ण ने मुस्कुरा कर कहा—"देवि ! श्रापने जो वात कही है, मैं बहुत दिन पूर्व ही से उसके लिए तैयार हूँ । जो कार्य मेरे - श्रवश्य सम्पादनीय हैं श्रापने श्रभी वहीं कहे हैं।"

इस प्रकार कुरुचेत्र का युद्ध समाप्त हुआ । पाण्डवों ने निष्कण्टक राज्य पाया । उन्होंने गान्यारी और धृतराष्ट्र को भिक्त और सेवा द्वारा प्रसन्न किया । वे दोनों भी क्रमशः शोक दुःख भृत कर पाण्डवों को पुत्रवत् समभक्तर उन पर सेह करने लगे। पाण्डवों के सद्व्यवहार से उनको कुछ कष्ट न रहा। किन्तु उनके लिए शान्ति दुलेंभ थी। हस्तिनापुर रमशान की भाँति सुनसान दीख पड़ता था। पतिपुत्रहीना खियों के रोने चिद्वाने से वे दिन रात आकुल रहते थे। पुत्रगर्खों का स्मरण उन दोनों के शोकार्त हृदय को

दग्ध करता ही रहता था। त्राख़िर उन्होंने वन में निवास करके तपस्या से जीवन का शेप भाग विताने का सङ्कल्प किया।

पाण्डवों से सलाह ले गान्धारी श्रीर धृतराष्ट्र गङ्गा के किनारे एक सुन्दर कुटी बना कर रहने लगे। वहाँ ये यज्ञ का अनुष्ठान, वेदपाठ का श्रवण और शास्त्रचिन्ता से शान्तिपूर्वक समय विताने लगे। धर्मातमा युधिप्टिर सदा उनकी खोज ख़बर लिया करते श्रीर कभी कभी उनके आश्रम में जाकर उन्हें देख आते थे। एक दिन घृतराष्ट्र जब यज्ञ समाप्त कर चुके तब पुरोहित उस यज्ञीय आग को निर्जन वन में फेंक कर अपने अपने स्थान की गये। कमशः वह श्राग सुखी लकड़ी में लग कर चारों श्रोर फैल गई। उस समय गान्धारी श्रीर धृतराष्ट्र कुटी में वैठे थे । श्रकस्मात् उन्हें श्राग की चटचटाहर और त्राश्रमवासियों का ग्रात्तनाद सुन पड़ा। वात की बात में आग ने भयानक रूप धारण कर कुटी की चारों और से घेर लिया। "अव रक्ता नहीं । भागी, भागी," यह शब्द वार बार उनके कान में आने लगा। धृतराष्ट्र ने गान्धारी से कहा-"प्रियतमे ! तुम श्रव श्रपनी श्रांख की पट्टी खेाले।, मार्ग सूक्त पड़ते ही श्रनायास यहाँ से भाग सकोगी। मुफ्तको साथ ले चलने से तुन्हारे जाने में न्याघात होगा । तुम भाग कर श्रपना प्राण वचाग्री; मेरे लिए कुछ चिन्ता न करो।"

गान्धारी ने कहा—''श्रापने इतने दिन वाद यह कैसा भ्रादेश किया ? किस सुख की श्राशा से मैं श्रापको छोड़ कर श्रपना प्राय वजाऊँगी ? श्राहए, एक दिन हम श्राप श्राग की साची रख

कर दाम्पत्यसम्बन्ध में बद्ध हुए थे, ग्राज उसी ग्राग में जीवन लाग

कर हम दोनों सदा के लिए शान्तिलाभ करें।" यह कह कर गान्धारी

जल कर भस्मीभूत हो गये।

पित के शरीर से लिपट गई और उसी अवस्था में दोनों आग में

चौथा ऋारूयान

सावित्री १४:*****म्द्रमागा श्रीर विपाशा नदी के मध्य का प्रदेश

२६ च भ पूर्वकाल में मद्रदेश के नाम से विख्यात था। किसी ※※※※※ समय इस मद्रदेश में अध्यपित नाम के एक राजा राज्य करते थे। राजा अध्यपित जैसे सत्यवादी थे,

वैसे हो जितेन्द्रिय श्रीर दयालु थे। उनकी पटरानी मालवी भी रूप-गुण में सब प्रकार उनके श्रनुरूप थी। उन दोनों के अच्छे गुण-

शील के कारण प्रजा उन्हें भ्रपने मां-वाप के वरावर मानती थीं। राजा श्रश्वपति की राजधानी श्रन्न, धन, परिजल श्रीर भोग

विलास की वस्तुओं से परिपूर्ण थी। पर उनके कोई सन्तान न थी, इस कारण उन दोनों पतिपत्नी का हृदय सदा उद्विग्न रहता था।

पश्चात् उन दोनों ने सन्तान की इच्छा से इन्द्रिय श्रीर मन को रोक कर कई वर्ष सावित्री देवी की आराधना की । श्रन्त में देवी की छुपा से उन्होंने एक श्रतुपम कन्यारत्न लाम किया। सावित्री देवी

भ्रुपा स उन्होन पक्ष अधुपम कन्यात्व्व लाम ।क्या। सावजा द्वा की दया से प्राप्त होने के कारण उस कन्या का नाम सावित्री रक्खा। सावित्री ग्रुक्टपच की ग्राशिकला की माँति दिन दिन बढ़ने

लगी। क्रमशः उसने थौवन की सीमा में पैर रक्सा। युवत्व प्राप्त होने के कारण उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग की शीमा और भी वट गई। वह अपने रूपलावण्य से रिव, रन्भा की भी लजाने लगी। उसे बार बार देखकर भी लोगों के नयन दूप न होते थे।

वसन्त का आगम होते ही मद्रदेश ने अत्यन्त रमयीय शोभा धारण की । तरुवतागण नये पद्धवों से सुशोमित हुए, वनभूमि जङ्गली फूलों के सुगन्ध से आमोदित हुई । आम की मंजरी पर मुँड के मुँड भोरे गूँजने लगे । कोयलें पञ्चमराग अलापने लगीं । राजा अश्वपति राजकार्य से छुट्टी पाकर अपराह को विशाम के हेंतु अन्तः पुर में गये । सांभ होते ही सारा महल असंस्थ दीप-माला से जगमगा उठा । देवमन्दिरों से शंख और घण्टाध्विन के साध्येविदपाठ सुनाई देने लगा । धूप से समस्त राजमवन सुगन्धित हो भेदिता ।

चिन्ध्यावन्दन के अनन्तर राजा महल के भीतर एक घर में बैठें। एक दासी पंत्री लेकर उनको भालने लगी । रानी उनके समीप ही एक दूसरे आसन पर बैठकर फूल की माला गूँ अने लगी। राजा ने रानी से कहा — "आज सावित्री यहाँ क्यों दिखाई नहीं देती? श्रीर दिन दरवार से मेरे आने के पूर्व ही वह मेरे पैर धुलाने के लिए जल लेकर खड़ी रहती थी। आज इतनी देर मुभको यहाँ आये हुई; सावित्री अब तक मेरे पास न आई इसका कारण क्या ?"

रानी ने कहा—"महाराज ! कल सावित्री के कत्यास्त्रव का उद्यापन होगा, इसी से आज वह पूजा करने के लिए देवमन्दिर में गई है। जान पड़ता है, सायंकालिक हवन देखने की इच्छा से अब तक वहाँ ठहरी है। किन्तु आप जो प्रतिदिन इस समय मीतर त्राते हैं, यह उसे मालूम है, इसलिए वह ग्राने में विलम्ब न करेगी ग्रव ग्राती ही होगी।"

सावित्री दिन दिन दुवली द्वेति जाती हैं । दुम वसे रोकती क्यों नहीं ?" रानी—"मैं रोकने से वाज़ नहीं खाती। किन्तु धर्मकार्य के फतुगुन में वह मेरी कही नहीं सुनती । मना करने पर वह मेरी

राजा--- "क्या उसने फिर कोई नया व्रत टाना है ? हाल ही में वह एक व्रत का उद्यापन कर चुकी है ! उपवास करते करते

पविव्रता ।

१०३

बाठ का उच्चर नहीं देती। फिन्सु उसका हुँ ह ऐसा उद्यास हो जाता है, उसके आह्न भरे नेजों से ऐसी अधीरता व्यक्त होने लगती है जिसे देखकर मेरा चित्र स्थिर नहीं रहता। में उससे कर देवी हूँ, वेटी! जो तुम्हें अच्छा लगे, करे। (? एक बाल में धीर देखती हूँ

कि ज्यवास करने ही से साथित्री का खाख्य ठीक रहता है। तम अर्थों से ही वह अच्छी रहती है। व्रताराधन के समय कजलान के बाद खुले केंग्र से साजान देवी की तरह उसकी जैसी शोमा देखें पढ़ती है, वैसी शोभा शृङ्कार करने पर भी में कभी किसी की नहीं देखती।

राजा — "मेरी वेटी सावित्री तपस्तिनी है । चत्रियाची की प्रपेचा शासची का स्वच्छ ही उसमें अधिक देख पड़ता है। जिस व्यक्ति में चात्रभर्म के साथ साथ शासच्यम्म भी कुछ कुछ होगा,

ज्यार्क म चात्रभम के साथ साथ जाडायाथमें भी कुछ कुछ होगा, वही इसके वपयुक्त वर होगा।" रानी—"अपन मैंने पहले ही से सीच रक्खा या कि आप से इस विषय में कुछ निवेदन करूँगी। अच्छा हुआ कि आपसे खर्य सावित्री के व्याह की बात चलाई। सावित्री अब व्याहने योग्य हुई। उसके व्याह की बातचीत से आप निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हैं ?"

राजा—"में निश्चिन्त नहीं हूँ। किन्तु सावित्री के योग्य सर्व-गुणी वर मिलना कठिन है। हम लोगों के सम्बन्ध योग्य कुल का अभाव नहीं है, किन्तु कोई अब तक सावित्रो को वधू रूप में प्रहण करने का प्रसाव नहीं करता। तुमने इस पर लच्य किया है या नहीं, यह में नहीं कह सकता। मैंने अच्छी तरह देखा है कि नवयुवक राजकुमार सावित्री की श्रोर सामिलाप हिट से देखना तो दूर रहा, उसके मुँह की श्रोर देखने का भी साहस नहीं करते। सावित्री को देख कर कितने ही राजकुमार उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करके चले जाते हैं।"

रानी—"ग्रापका कहना वहुत ठीक है; किन्तु सावित्री के उपयुक्त वर न मिल्ले तो क्या वह कुमारी ही रहेगी ? प्रव उसे किसी वर के हाथ सींप देना ही उचित है।"

राजा—''तुम इसके लिए चिन्ता मत करो। मैंने इसका उपाय सोच लिया है। मैं सावित्री ही के ऊपर उसके पतिनिर्वाचन का भार देंगा।'

रानी—"यह कैसी वात ग्राप कह रहे हैं ? हम ग्राप उसके माता-पिता होकर उसके उपयुक्त वर स्थिर नहीं कर सके। वह वेचारी तो एक अज्ञान वालिका है। वह ग्राप ही ग्रपने पति का निश्चय कैसे कर सकेगी ?"

राजा—"दूसरी कुमारिका होती तो मैं ऐसी बात न कहता। सावित्रो जैसी बुद्धिमती, सुशीला स्रीर धर्मपरायणा है इससे पितवरण करने का भार उसके जगर देना अयुक्त न होगा। सावित्री अब सयानी हुई, यदि हम उसके लिए वर ठीक करें और वह उसे पसन्द न हों तो उसके मन में वहा दु:ख होगा, उसके साथ हम लोग भी दुखी होंगे। अगर सावित्री अपनी पसन्द से पित चुनेगी तो किसी के मन में कुछ दु:ख न होगा। दुस यह निश्चय जानो, गङ्गा महासगुद्र को छोड़ कर चुढ़ जलाशय में कभी प्रवेश नहीं करती। वह जब आत्मसमर्पण करेगी, महासगुद्र हो में। सावित्री कभी अयोग्य वर को स्वीकार न करेगी। यदि दैवयोग से उसका पित गुणशील में उससे कुछ न्यून भी होगा तो जैसे पारस मणि के स्पर्ध से लोहा भी सोना वन जाता है वैसे ही वह भी गुणवान हो जायगा।

रानी—''आपकी जो इच्छा हो, करें।''
इसी समय किसी के नुपुर की मन्द मन्द मधुर ष्विन सुनाई
देने लगी। रानी ने कहा—''महाराज! यह श्रापकी सावित्री श्रा
रही है।'' रानी की वात ख़तम होते न होते सखी को साथ लिये
सावित्री जस घर में पहुँच गई। सावित्री के वाल खुले थे, ललाट
में चन्दन लगा था, कण्ठ में फूल की माला थी, वसन्ती रङ्ग की
सारी पड़ने थी। उसके उपवास से खिलगुख के ऊपर दीपक की
ब्योति पड़ने से वह सार्यकालिक कमल की मीति सुन्दर दिखाई
देता था। राजा वात्सल्यमरी हिए से सावित्री के मुँह की श्रोर
देखने लगे। सावित्री माँ-वाप की प्रणाम करके दाखी के हाथ से
पंखा लेकर पिता की हवा करने लगी। राजा उसे रोक कर वोले।
''वेटी सावित्री, तुम श्राल दिन भर की मुखी हो, तुमको पंखा

भज़ना न द्वेगा। मुक्ते गरमी मालूम नहीं होती।" यह कह कर राजा ने बढ़े प्यार से बेटी को अपने पास बिठा कर कहा— "उस दिन तो तुम मेरे और रानी के दीर्घजीवन के लिए ब्रत कर ही चुकी हो। आज फिर कैसा ब्रत किस अभिप्राय से कर रही हो ?"

सावित्री—''पिताजी ! पुरोहित ने कहा है, ख्राज करवाय-पश्चमी है। ख्राज उपवासपूर्वक देवीपूजा करने से प्रियजनों का किसी तरह का कोई अमङ्गल नहीं होता । इसलिए जिसमें हमारी प्रजा दुर्भिच ख्रीर महामारी ख्रादि उपद्ववें से कष्ट न पावे मैंने ख्राज उपवास किया है। कल जगदम्वा की पूजा करूँगी।"

राजा—"वेटी ! तुम्हारी सी कन्या पाकर हम प्रपने की घन्य मानते हैं। हम दोनों खीपुरुषों ने जी उतने दिन कठिन तपस्या की थी, वह सार्थक हुई। किन्तु तुम ग्रभी वालिका हो, बराबर उपवास करके शरीर को इतना कष्ट मत दो। पहले ग्रपने शरीर की रचा करके पीछे धर्माचरण करना उचित है।"

सावित्री—''उपवास से मुम्ते विशेष कष्ट नहीं होता। विना क्रब कष्ट सहे धर्म कैसे होगा ?"

रानी ने महाराज से कहा—''श्राज सावित्रो महर्षि देवल से उपनिषद् (वेदान्त) पढ़ते समय एक कहानी सीख आई है। वह आपको और मुक्ते सुनाना चाहती है। आपकी आहा पावे ते। कह सुनाव।"

राजा—''ग्रच्छा तो, सावित्री ! कहो कौनसी कहानी सीख ग्राई हो ?" सावित्री—"वह कहानी मुक्ते बहुत ग्रन्छी लगी। महर्षि ने जिस तरह कही थी, मैं उस तरह नहीं कह सक्टूँगी, तथापि जहां तक ही सकेगा, मैं कहने की चेटा कहूँगी। वह कथा इस प्रकार है—

"पूर्वकाल में देवता स्रीर दानवें। में घोर युद्ध हुन्ना था। कई वर्षतक युद्ध जारी रहने के बाद देवताओं ने जयलाभ किया। श्रसुरगण हार कर भागे । देवगण युद्ध में विजयो होकर वड़े गर्वित हुए। उन्होंने समभा, हम सवों ने अपने बाहुबल से श्रसुरों की जीता है, इसलिए युद्धविजय के सम्पूर्ण सुयश के भागी हमीं लोग हैं। इस तरह जब उन लोगों के मन में ग्रहङ्कार उत्पन्न हुत्रा, तब उन्हें एक दिन एक श्रपूर्व ज्योति देख पड़ी । उस ज्योति की स्नागे सब प्रकाश फ़ीके पढ़ गये। यह देख कर वे लोग वहे श्रवस्भे में श्राये श्रीर सोचने लगे कि यह कैसी ज्योति है ? इस लोगों ने ऐसी दिज्य ज्योति ग्राज तक कभी न देखी थी, इसकी जाँच करनी चाहिए। यह सोच कर उन्होंने श्रिप्रदेव की उस ज्योति के पास भेजा। प्रप्रिदेव को अपने पास ध्राते देख कर ज्योति ने श्राकाश-वागी के द्वारा उससे पूछा—"तुम कौन हो ?" श्रप्रि ने कहा— "मैं भ्रक्षि हूँ।"

ज्योति—"तुम में क्या शक्ति है ?"

श्रिप्त—''मैं चाहूँ तो चल भर में सारे ब्रह्माण्ड की जला कर भस्म कर हूँ।"

ज्योति—"ग्रच्छा ! इस तृष्ण को जलाग्रो ।" यह कह कर एक विनका उसके स्नागे फेंक दिया । अग्निदेव बहुत चेष्टा करने पर भी उस तिनके की न जला सके। श्राखिर वह लिजत होकर देवताओं के पास लीट श्राये।

तब देवताओं ने वायु को उसके पास भेजा। ज्योति ने फिर उससे पूछा तुस कौन हो १"

. वायु—''मैं पवन हूँ।'

ज्योति--''वुम में क्या शक्ति है ?"

् वायु—''में चाहूँ तो चया भर में सारे विश्वन्नद्धाण्ड को उड़ा कर कहीं से कहीं ले जा सकता हूँ।''

ज्योति—"श्रच्छा, इस तिनकों को उड़ाकर दूर लें जाग्रे।।" नायु नहुत चेष्टा करने पर भी उस तिनकों को ज़रा भी न

वाधु वहुत यथा करन पर मा उस तिनक का ज़रा मा न हिला सकें, दूर हटाने की कौन वात । पीछे लिजत होकर वे भी अपनी जगह की लीट गये।

त्तव स्वयं इन्द्र उस ज्योति के पास गये। बुद्धिरूपियी भगवती के द्वारा उन्हें ज्ञात हुआ कि ब्रह्म ही वह ज्योति स्वरूप है। संसार में जो कुछ देख पड़ता है सब का मूल वही है। तब से देवताओं ने जाना कि उनकी निज की स्वतन्त्र शक्ति कुछ नहीं है। उसी मूलशक्ति से उन लोगों की शक्ति उत्पन्न हुई है। यह जान कर उनका अभिमान चूर चूर हो गया।"

यह कह कर सावित्रो बोली—''कहिए, यह कहानी कैसी अच्छी है १''

राजा—''बहुत अन्छी। तुम जे इस तरह जी लगा कर शास्त्र पढ़ रही हो, इससे मैं अखन्त प्रसन्न हूँ। तुन्हारे पुण्य से मेरे वंश का गैरव बढ़ेगा।" यह कह कर राजा ने रानी

805

की ग्रीर देखा। रानी ने उनका श्राशय समक्त कर दासियों को रल जाने का इशारा किया । वे वहाँ से धीरे घीरे हट गईं। तव राजा ने सावित्री से कहा—"वेटी, हम तुमसे कुछ कहना चाहते हैं।'

सावित्री--"ग्राज्ञा कीजिए, ग्रापकी ग्राज्ञा हम सवों की शिरोधार्य है।"

राजा—''वेटी ! तुम अब च्याहने योग्य हुई, जिस उम्र में क्षियां गृहस्थधर्म में प्रविष्ट होती हैं, वह उम्र ग्रव तुम्हारी हो चुकी। श्रव तुम किसी योग्य वर की पत्नी होकर गृहस्थधर्म का पालन करो, यही हमारी इच्छा है । किन्तु वात यह है कि हमें तुम्हारे योग्य उपयुक्त वर नहीं मिलता, इसलिए तुम भ्रापही कोई वर पसन्द करो । इस उसके साथ वडी प्रसन्नता से तुम्हारा व्याह कर देंगे । यही तमसे कहना था।"

सावित्री सुन कर चुप हो रही। राजा ने फिर उससे कहा-"इसमें संकोच करने की कोई वात नहीं। खयं पित वरण करने की रीति इमारे चत्रियसमाज में पूर्वकाल ही से प्रचलित है। यह कुछ नई रीति नहीं जिसके लिए हमें कोई हैंसेगा। इस तुमकी उसी पुरातन प्रथा के अनुसार चलने को कहते हैं। तुम अपने मन से देश विदेश घूमो, शहर में, देहात में, या तपावन में जहाँ तुम्हारे मनातु-कूल वर मिले, आकर हमसे कहो, हम तुन्हें उसके हाथ सैांप देंगे।"

में किसी विपद की श्राशङ्का तो नहीं है ?"

राजा—"विपद को कोई स्राशङ्का नहीं। मेरा राज्य सुशा-

रानी--"महाराज ! सावित्री के इस प्रकार देश-देशान्तर चुमने

सित है, इस कारण मेरे राज्य में शायद ही कोई उच्छूह्लल और दुराचारी होगा। मैं प्रजाओं का पुत्रवत् पालन करता हूँ, इस-लिए कोई मेरी कन्या के साथ कदापि श्रनिष्ट व्यवहार नहीं कर सकता। मेरे पड़ोस के रहने वाले राजा महाराजा सभी मेरे मित्रवा-सूत्र में वैंथे हैं। इसलिए सावित्री उनके प्रजा-गणों से सम्मानित होगी। सावित्री अकोली तो जायगी नहीं। उसके साथ उसकी दो सिखगं उसकी दासी श्रीर मेरे बृढ़े भन्त्री सुप्रक्ष भी जायेंगे।"

रानी—"तो कोई चिन्ता नहीं।" पीछे उन्होंने सावित्री की ग्रार देखकर कहा—"वेटी! रात ग्रथिक बीती, तुम त्रती होकर दिन भर की भूखी व्यासी हो। ग्रब जाकर सो रहो।"

सावित्री भाता-पिता की प्रणाम करके सोने चली गई।

विपाशा नदी के बांबे किनारे कीसों तक घना जङ्गल है। उसके भीतर एक सुन्दर आश्रम है। किसी समय विशाष्ट्रमुनि ने उसी आश्रम में तपस्या करके सिद्धिलाम किया था, तब से वह आश्रम तपस्वी ऋषियों का निवासस्थान हो गया। वह आश्रम इतना प्रसिद्ध हुआ कि वानप्रस्थाशमी व्यक्ति भी वहाँ आकर आश्रय लेते थे और मुनियों के साथ रहते थे। देश-देशान्तर से अनेक विद्यार्थी आकर विद्या पढ़ते थे। इससे वह आश्रम सदा ही वेद-पाठ से प्रतिश्वनित होता रहता था। विद्यार्थी और ऋषिकुमारों में बड़ो प्रीति थी। वे सब एक साथ पढ़ते थे, एक साथ गुरु की गायें चराते थे, एक साथ होम की लकड़ी, कुश और फूल लाते थे। किसी को बोमारी होती थी तो सब उसकी, श्रय्या के पास बैठकर उसकी सेवा करते थे। गाँव के लोगों में जो

प्रेमभाव होना दुर्लभ है वह ऋषिक्रमारों को तपावन में सहज ही प्राप्त था। वे एक दूसरे की सहायता करके कृतार्थ होते ये।

एक दिन किसी पर्व के कारण कितने ही ऋषिक्रमार स्नान करने के लिए विपाशा नदी के तीर श्राये। उनमें कोई कोई विपाशा के खच्छ जल में स्नान करने लगे, कोई शिलाखण्ड पर घैठे, कोई पीछे त्राते हुए मृग-शावकों के लिए कोमल घास लाने श्रीर कोई फूल तोड़ने लगे। देा ऋषिकुमार श्रीर साथियों से क़छ दूर एक वृत्त के नीचे खडे होकर परस्पर वातचीत कर रहे थे। दोनों का पहनावा ख्रीढावा ख्रीर वयस एक होने पर भी दोनों के आकार में वडा अन्तर था। एक देखने में साधारण ऋपिकुमार के सहरा था, किन्तु दूसरे की देखने से वह ऋपिकुलोत्पन्न नहीं जान पढ़ता था। उसका लम्बा शरीर, विशाल वचःखल, कन्धा स्रीर वाह पुष्ट थे। उसके श्रङ्ग प्रसङ्ग से कमनीयता के साथ बिलप्टता प्रकट होती थी। दोनों गपराप कर रहे थे। ऐसे समय में एक सवार हाथ में छडी लिये वहाँ श्राया ग्रीर उचस्वर से वोला—''ऋपिकुमारगण, मद्रदेश की राजकुमारी सावित्री देवी आज इस त्रेशवन में आई है। आप लोग उनका प्रशास स्वीकार करें, यही मैं आप लोगों से कहने श्राया हूँ।"

यह सुनकर पूर्वेक दोनों ऋषिकुमारों में एक ने दूसरे से कहा—"मित्र सखवान ! देखेा, भेरी वात सच हुई न ? हम सव ब्राह्मख हैं, हम सबों का भाग्य सदा समान रहेगा। एक सुट्टी चावल और कवे केले से ही हम लोगों को सांसारिक सब मनोरथ पूर्ष करना होगा। किन्तु तुम चित्रय हो, तुम्हारा भाग्यं परि- वर्तनशील है। किसी युद्ध में पराजित होने से, सम्भव है, ब्राज राजा से तुम मिज़ुक वन सकते हैं। श्रीर कत युद्ध में विजयी होने

सावित्री ।

888

ं से एक वड़े राज्य के श्रधिपति हो सकते हो। यह जो राजकुमारी श्राज वपोवन में श्राई है, कौन कह सकता है कि वह खर्यवर की सभा में तुमको पसन्द न करेगी ?"

सत्यवान्—''प्रिय सत्यवत ! देखता हूँ, ग्रव विद्यालाभ की श्रपेचा त्राह्मणीलाभ की इच्छा ही तुम्हारी वलवती हो रही है। तुम कहें। ते। यह संवाद कौशाम्त्री में तुम्हारे पिता के पास भेज हैं ।"

सत्यवत-"ठहरिए, यह बात पीछे होगी। श्रमी घर पर चलो । हम लोग तो भाई, तेल के अभाव से रूचकेशा, वस के ध्रभाद से बल्कलधारियी और अंतेपनास से खित्रशरीरा तपेवन-वासियों को ही जन्म से देखते आते हैं। राजकुमारी कैसी होती है कभी न देखी, चलो, एक बार देख लें। तुम्हारा ता राजकुल में जन्म है, कहो, क्या राजकुमारी के भी साधारण श्री की तरह डेा ष्टाय थ्रीर दे। आँखें होती हैं ?"

सत्यवान--"हाँ, मित्र ! वैसे ही सब जुड़ होते हैं। परन्तु हम लोगों को राजकत्या के दर्शन से क्या लाम होगा ?" देखे।, सुर्यदेव माथे के ऊपर आ गये । अब दोपहर का समय हो गया । महर्षि यञ्जावशिष्ट हमिष्य बाँटने के लिए सब हम सीगीं की खोज करेंगे। इस सबों के जाने में विश्वस्य होने से वे दुखी होंगे। चहो, भटपट सान करके आश्रम को और चहों।"

दोनों नहाने के लिए नदी की श्रीर अगसर हुए। उसी समय सावित्री भी परिजनों से विरी हुई धूमती फिरती उसी ओर ब्रा निकली। जङ्गल का रास्ता स्वभावत: टेढ़ा मेढ़ा होता है। दी ग्रीर से दो सडकें श्राकर एक जगह मिल गई थीं। सावित्रो श्रीर सत्यवान दोनों की भेट परस्पर ठीक उसी जगह स्राकर हुई। दोनों की चार श्रांखें वरावर हुईं । दोनों चित्रवत् खड़े होकर एक दूसरे को निर्निसेप नेत्र से देखने लगे । दोनों के हृदय में एक अपूर्व भाव का उदय हुआ। दोनों एक दूसरे का रूप देखकर मोहित हुए। कुछ काल दोनों विस्मित हो रहे। इसके ग्रनन्तर जिस भाव का ग्रनुभव उन दोनों के हृदय में कभी न तुत्रा था कमश: उसी माव का श्रमुमव उन्हें होने लगा । दोनों के शरीर कण्टकित हुए, ललाट पर पसीने की वूँदें दिखाई देने लगां। पीछे संकोचवश दोनों उस स्थान की त्याग कर अपने अपने गन्तव्य पथ की और जाने की उद्यत हुए, पर किसी के पैर स्नागे को न उठे। दोनों ऋपने श्रपने मन का भाव छिपाने की चेष्टा करने लगे किन्तु कृतकार्य न हो सके। ऋषिकुमार ने मित्र का भाव देखकर कहा--"मित्र ! गुरुदेव के यज्ञावशोप बाँटने का समय हो गया, आश्रम लीट चलने में विलम्ब क्यों कर रहे हो ?"

सावित्री की दासी भी सावित्री की श्रीर लक्त्य करके वोली--"राजकुमारो ! वपोवन तो हम सव देख चुकीं, चलो, श्रव हम सव दसरी श्रीर चलें ।"

दासी का आशय समभ कर सावित्री वोली—"वहुत दूर धूमने से मेरा शरीर थक गया है, चलो अब राजधानी लीट चलें।" दासी ने कहा—"अच्छा, यही सही।"

आज अश्वपति श्रीर दिनों की श्रपेचा पहले ही श्रन्त:पुर में

सावित्री ह

ष्टाणे हैं। ब्राज जनका गुँह सूखा है, वार्रवार तीत्र निःश्वास स्ने रहे हैं। मानो कीई कठिन सनस्ताप अनको हृदय की सन्ताप कर रहा हैं। वे अपने शयनगृह में पहुँग पर मैठे थे, उनके आने की सुबर पाकर राजी भी उनके पास आई। उन्होंने राजा केंद्र चिन्तित देखकर पूछा----

"महाराज ! आज आपको ऐसा ट्वास और शिक्षित क्यों देखतो हूँ १ सावित्री प्रथमे पसन्द का वर ठीक कर आई है। श्रापको अब ग्रासन्दर्श्वक दसके ज्याह को सैयारी करनी चाहिए, या एकान्त में बैठकर ब्रांसू बहाना चाहिए ! ध्रापका ऐसा साव देखकर सेरा जी बहुत न्याकुछ है। रहा है। कहिए क्या हुआ है १०० राजा-- 'क्या कहूँ १ इमने सावित्री की खर्य पति हुँ ह जैसे का भार देकर भारी मूर्खंता का काम किया। अपने हाथ से अपने पैर पर जलहाड़ी सारी।"

रानी---''क्या हुम्रा १ क्या सावित्री किसी अयेक्न्य वर की पसन्द कर बाई है १%

राजा—''नहीं, सादित्री वैसी नासस्मा नहीं है। सादित्री ने . विशिष्ट के कावम में जाकर जिसे पति के बोग्य चुना है, सन्त्री ह्यप्रज्ञ जसका पूरा परिचय छान्ने हैं। हुमने शास्त्रदेश के राजा धुमत्तेन का नाम कभी सुना होगा। बुढ़ाएं में वन्हें धम्भा और जनको पुत्र को वालक देखकर हुरसनी ने अनका राज्य हुड्प ख़िवा । वें इस समय सी धीर वेटे की साथ हो विशिष्ट के धावम में रहते हैं। सावित्रों ने निर्वासित राजा बुमत्सेन के पुत्र ससवार की

पतिभाव से स्वीकार किया है।"

रानी—"सरावान राज्यधन से रहित हैं, क्या इसीलिए आप इतना सोच कर रहे हैं ?"

राजा—''नहीं, इसके लिए मैं ज़रा भी सोच नहीं करता।
मैं अपने दु:ख का कारण तुमसे कहता हूँ, सुनो--श्राज देविर्प नारद वहाँ श्राये थे, मैंने मन्त्रों के मुँह से सखनान धीर सावित्री के परस्पर अनुराग की बात सुनकर उनसे सखनान के सम्बन्ध में 9ुळा था।"

रानी--"देवर्षि ने क्या कहा ?"

राजा—''उन्होंने कहा, रूप, गुण श्रीर शील में सखवान के समान संसार में कोई नहीं है। सखवान जितेन्द्रिय, चमाशील, मुनिवृत्त श्रीर उदाराशय है। किन्तु ये सब गुण रहने हो से क्या होगा? एक प्रवल दोप ने सखवान के सभी गुणों पर पानी फेर दिया है।"

रानी---"कैसा दोप ?"

राजा—"सत्यवान भ्रष्टपायु है । देविषे ने कहा है, आज के

वर्षवें दिन सत्यवान की मृत्यु होगी।"

सुनकर रानी चौंक डठीं, उनका सारा शरीर कांपने लूगा। वे बड़ी अधीरता से वोलीं—''महाराज! ग्रव इसका क्या उपाय है ?"

राजा—"उपाय तो धीर कुछ नहीं सूफता। यदि सावित्री दूसरा पति पसन्द करे तभी रचा है। नहीं तो हम होग सदा के लिए शोकसमुद्र में निमन्न होंगे। तुम सावित्री को यहाँ बुलाग्री,

हम तुम दोनें। उसे समका कर देखें, शायद वह मान जाय ।'' रानी—"मैं ग्रभी उसे यहाँ बुत्ता मेज़ती हूँ, किन्सु सावित्री कमल सा कोमल है, दूसरी ब्रार क्ज से भी कठोर है। वह जिसे धर्मसङ्गत सममेगी, प्राष्ट जाते भी वह ज्सके विकद्ध काम न करेगी। ईश्वर की जो करना होगा वही होगा।

माता-पिता की युलाहट से सावित्री पुरन्त वहाँ बाई, श्रीर वनको प्रधास करके मीठे सर में बोली—"श्रापने क्यों सुके बुलाया है ? क्या झाझा होती है ?"

राजा—"हां, बेटी ! मैंने तुसकी बुखाबा है, तुस मेरे पास त्राकर वैठो,'' इस प्रकार उसे अपने पास विठा कर राजा ने स्नेह भरे सन में पूछा—''तुम कई दिन तक कितने ही सानों से घूम कर धाई हो, कहो, तुन्हें मार्ग में कोई कप्ट ते। नहीं हुआ 💯

सावित्री—''नहीं पिताजी! सुमें कुछ कष्ट न हुआ। वल्कि इतने दिन मेरे बढ़े धानन्द में कटे। कितने ही सुन्दर देश, नदी, भीर पहाड़ आदि देखने में आर्थ । वह आपसे फर्हों तक कहूँ ? कहीं कमलवन से सुशोभित सरीजर थे, कहीं खेतीं में धान के हरे पेंड़ सहस्रहा रहे थे। कहीं भरतीं से जल गिरने का मधुर शब्द सुनाई देता था। कहीं पहाड़ के ऊँचे शिखर पर मेथें। की शोभा दिखाई हेती थी। देहात में ये सब दृश्य कहीं दिखाई नहीं हेते। देहाती में जहाँ देखिए वहीं मैले कुचैले लोगों की भीड़माड़ और सब्बों पर चूल ही वृत्त दिखाई देती है। मेरा जी चाइता था, असर माँ फ्रीह आप मेरे साथ होते तो में यहाँ लीट कर न आती।"

राता—''बेटी ! तुम निर्विष्ट लीट बाई, यह देख कर हम बहुत प्रसन्न हुए। अब तुमसे दो एक प्रावश्यक वातें कहनी हैं।

त्रमने जिसे पतिमान से अङ्गोकार किया है, उसके सम्बन्ध में इसने सब बातें जानी हैं। तुस मेरे श्रीर श्रपनी मां के श्रतुरोध से वसे त्याग कर दूसरा पति खोजी।"

सावित्री पिता के कथन का कुछ उत्तर न देकर चुप ही रही। राजा ने फिर उससे कहा-"वेटी ! हम क्यों तुमसे यह कहते हैं.

इसका कार्रख सुनो । आज देवर्षि नारद हमारे यहाँ आये थे। हमने सत्यवान के विषय में उनसे पूछा था। वे उसके अनेक गुर्शे का वर्णन करके श्रन्त में बोले---''ये सब गुण रहने ही से क्या

होगा ? सरावान् प्रसान्त प्रारपायु है। श्राज के पूरे वरसवें दिन उसकी मृत्यु होगी।¹१ ऐसे श्रारपायु वर की श्रात्मसमर्पण करने से केवल तुर्म्हां को नहीं, तुर्म्हारे साथ इस लोगों की भी चिरकाल वक शोकसमुद्र में निमन्न होना पड़ेगा ! ऋव भी समय है । तुम

उससे विरत हो।" सावित्रों के सिर से पैर तक माना विजली दै। कृ गई। किन्तु

उसके चेहरे पर कुछ विलच्छता न देख पड़ी। रानी बोली--- "सावित्री ! महाराज जी तुमसे कह रहे हैं, वह धर्मनिरुद्ध कार्य नहीं है। कुमारी शतंवरा होती है। सैंकड़ों

जगह उसके व्याह की बात होती है, परन्तु व्याह एक ही वर के साथ होता है। तुमने सत्यवान को देख कर उन्हें प्रपने योग्य वर निर्घारित मात्र किया है। पति रूप में तो उनको स्त्रीकृत किया ही नहीं है। यदि करती तो भी तुम्हारा उन पर कोई अधिकार न .था। कारण यह कि जितने दिन पिता कन्या का प्रदान न करे

, अतने दिन उसे किसी को पतिकृप से वरण करने का अधिकार

नहीं। सलवार अल्यायु है, यह जान कर जब उसके साथ तुम्हारा ज्याह होना इस सबें। की पसन्द महीं है वन सलवार की छोड़ कर किसी अन्य व्यक्ति की खोकार करने से तुम पापित्तर नहीं हो सकर्ता। सन्दानों के लिए साता-पिता का आज्ञा पालन ही परस धर्म है। इसे तुस कसी सत भूजों।"

साबित्री वैठी थी। उठ कर बढ़ी हुई। उसने हाथ जोड़ कर वह विनीत कर में माना पिना से कहा — 'मैं कभी ध्रापको आज्ञा के विरुद्ध कोई काम नहीं करती। इस संसार में आप ही मेरे पूज्य देवता हैं। देवाज्ञा की भांकि आपको आज्ञा का पालन करना ही मैं अपना परस धर्म समस्त्रती हूँ। किन्तु इस समय आप जो आज्ञा करते हूँ, उसके पालन से केवल मैं ही नहीं, आप होग भी पाप के भांगी होंगे। मैंने आपको प्राप्ता के अनुसार ही पति का निवर्णन किया। अपनी इच्छा से छुद्ध नहीं किया है। कर्म अवक्ष के सरक्ष्य में मन ही प्रमाण होना है। व्योधिक कर्म पहले मन ही के द्वारा निवर्णन किया। सम्पाद होना है। व्योधिक कर्म पहले मन ही के द्वारा निवर्णन होना है। क्यांकि कर्म पहले मन ही के द्वरा निवर्णन होना है। क्यांकि कर्म पहले मन ही के द्वारा निवर्णन होना है किया है। हमित क्यांकि कर्म पहले मन ही के द्वारा निवर्णन होना है किया हमा हारा सम्मादित होता है। किया मी है—

''यन्मनसा ध्यायति तद्भाचा वदति यद्भाचा वदति तत्कर्म्भणा करोति''

इस जिए जो वात में मन में सिग, कर जुली हूँ, वह एक प्रकार से हो गई समिमिए। जब वे जल्याबु हों या दीवाँबु, वे सेरे पित हो जुके। जनका परिताग करने से में अवसीमानीला हूँगी। जाप कहते हैं, उनकी आयु एक वर्ष और है, क्सरेस दिन जकी। जीवसकीका समाम हो जावगी, यह प्र होजर पढ़ि उनकी आयु एक ही दिन में पूरी हो जावी तो भी उनका टाग मुफसे न हो सकता। बहुत क्या कहूँ, विवाह होने के पूर्व यदि में उनके अमङ्गल की बात सुन पाऊँगी तो मैं अपने को......।"

सावित्री इससे अधिक और कुछ न बेाल सकी। उसका कण्ठ रक गया। उसकी आँखों से आंसू वहने लगे। रानी वेटी की यह अवस्था देख कर खिर न रह सकी। उनकी आंखों में भी आंसू भर आये। वे सावित्री की खींच कर छाती से लगा उसकी आँख पोंछने लगीं। पत्री और पुत्री की दशा देखकर राजा की आंखें भी डवडवा आईं। रानी और राजा दोनों सावित्री का खभाव जानते थे, इस लिए उन्होंने उससे और कुछ कहने की आवश्यकता न समर्भा। राजा ने केवल उससे इतना ही कहा—''वेटी! जो तुम्हारी इच्छा होगी, वही होगा। इस हदय से आशीवांद देते हैं, यदि इमने मन, वचन और कर्म से सावित्री देवी की धाराधना की होगी वे। तुम्हें वैधन्य का छेश न भोगना पढ़ेगा।"

सावित्री पिता से ब्राह्मा ले अपने महल को गई। राजा श्रन्थ-पित ने तपोवन में द्युसत्सेन के पास दूत भेज कर सावित्री के व्याह की आयोजना करने के लिए मन्त्रियों की अपहा दी।

शुभ दिन शुभ घड़ी में वड़ी धूम धाम से सत्यवान् के साथ सावित्रों का व्याह हो गया । राजा अथपित ने वन्धु-वान्धवों को साथ ले तपोवन में जाकर कन्यादान किया। कई दिनों तक तपो-वन आनन्दोत्सव से भरा रहा । विद्यार्थी राजा के दिये हुए मॉर्ति मंति के मिप्टान्न-पान से, आश्रमवासी विविध प्रकार के खेल समाग्रे देखने से और ऋषि-पत्नी और ऋषिकन्यारे बहुसूच्य सूच्या-सक्त को लाभ से छम हुई। भूवा-वस्त्र के व्यवहार के कारव भारों कीलुक-हुआ। तपोवन की रहने याली विश्वों ने पहले कभी वैसे आमुख्य न देखे थे। इसलिए किसी ने किहुबूची को कण्ठ में और कण्ठ-भूच्या को बाह में पहना। किसी ने पेसर को कान में और कान-भूच्या को बाह में पहन लिया। यह विचित्र लीला देख कर रानी के साथ की खियों ने बड़े कह से हेंसी रेखी। कई दिन विमेवन में रह कर रानी और राजा आंसू भरी जांसी से बेटो और दामाद के निकट से विदा ही राजधानी की लैट झाये।

सावित्री के पदार्पण के साथ ही ग्रुमत्सेन के प्राश्रम ने नई शोभा धारण की। कुटों के चारों श्रोर की जगह ,खूब साफ सुथरा रहने लगी। आँगन रोज़ रोज़ लीपा जाने लगा। एक भी कंकड़ या काँटे का पेड़ घर के पास न रहा। ग्राश्रम के लता १७ फल फूलों से श्रविक सुशोभित हुए । होम की गाय अधिक दूध देने लगी। अतिधिगण पूर्व की अपेचा भाजन सत्कारादि से अधिक रूप होने लुगे । राजा द्यमत्सेन और उनकी पत्नी को नववधू की सेवामिक से शरीर में नये वल और हृदय में नवीन स्फूर्ति का अनुभव होने खगा। सावित्री की पाकर सत्यवान की कितना हर्ष हुआ, इसका वर्णन नहीं हो सकता । दरिद्र वयेच्छ धन पाकर, रोगी पूर्ण रूप से आरोग्य लाभ करके, निवार्थी विद्या प्राप्त करके ग्रीर साधक जन सिद्धि पाकर जो सुख पाते हैं, सत्यवान ने सती सावित्री को पाकर वही सुख पाया। वे सन ही सन सीच कर पुत्तकित होते शे कि मैंने पूर्व जन्म में कीन ऐसा पुण्य किया जिसके फल से

वित्रवता । 220

सावित्रों के पति होने के कारण अब मुक्ते गुरू, ज्ञान ग्रीर धर्म की विशोप योग्यता प्राप्त करनी चाहिए । मुक्ते अपने की अधिक श्रेष्ट बताना उचित है।" जो भ्रपने गुरा से भ्राश्रम के पालित हिरन से लेकर स्वामी

विधाता ने मुमत्को सावित्री सी पवित्रता स्त्री दी । सावित्री के साह-वर्ष से उनके खामाविक सभी गुरूष और भी सजीव हो उठे। शाख-पठन में उनकी निष्ठा और भी बढ़ गई । जीवों पर दया श्रीर तप-श्चर्या में ऐकान्तिक प्रीति विशेष रूप से स्टपन हुई । वे सोचते थे.

पर्यन्त सबको प्रसल किये रहती थी. उसको मन की अवस्था भी एक बार देखनी चाहिए । सावित्री भी चोग्य पति पाकर वहत प्रसन्न हुई; प्रसन्न ही नहीं, वह अपने की परम कृतार्थ सानती थी। वह

राजकन्या थी। घर का काम करने का उसे श्रभ्यास न था। किन्त श्राश्रम में आते ही वह इस श्रानन्द और उत्साह के साथ काम करने लगी जो गृहस्य की खियों से भी होना कठिन था। जी काम

गृहस्य को खियाँ सहसा नहीं कर सकती थीं वह सावित्रो सहज ही कर लेती थी । जाड़े के दिनों में वह ख़ुब सबेरे विपाशा से पानी ले श्राती थी, प्रचण्ड श्रीष्म काल में वह श्राग के नज़दीक बैठ कर रसेाई बनाती थी। उसे काम करने में छेश होता है, इस आशङ्का से

कहीं उसकी बूढ़ी सास स्वयं कोई काम न करें यह सोच कर वह धर के सब काम पहले ही कर लेती थी । वह सास को कोई काम करने का अवसर न देती थी। उसकी मीठी वातों से उसके बूढ़े सास-समुर के हृदय प्रावा शीतज होते थे। उसका प्रसन्न

मुखमण्डल उसके पति के श्रयनागार की प्रकाशमान कर देता था।

सावित्री का पवित्र श्राचरण देख कर यही जान पड़ता था नैसे , जसको तपोवन के निवास में जन्म ही का श्रभ्यास हो। किन्तु दोपहर दिन की उज्ज्ली श्रुप में भी जैसे भेष की स्नाय

कभी कभी धरती की मलिन कर डालती है वैसे ही उस जानन्द से मरे हुए प्राप्तम में भी दारुख विवाद वीच वीच में सावित्री के हुद-याकाश की श्रन्थकार से भर देता था । घर का काम करते करते सावित्री कभी कभी वीत्र साँस होने हरावी थी, स्वामी के साथ प्रेमालाप करते समय कभी कभी उसकी आँखों में घाँस भर ग्राते श्रे। स्वामी के निद्धित होने पर वह उनके पास बैठ कर अनिसेष दृष्टि से उतका मुँह निहारा करती थी । वीच वीच में वह उनकी नाक के पास हाथ रख कर इस बात की परीचा करती थी कि उनकी साँस चलती है या नहीं । कभी सावित्री का गर्स झाँस छाती पर गिरने से गाढ निद्रा में सेाये हुए सहावान् चैंक एठते थे । सावित्री का शरीर दिन दिन दवला और मुख की कान्ति मलिन होती जाती थी। वह दिन दिन क्यों ऐसी चीछ होती जाती है इसका कारण कोई न जानता था। अपि की पद्मियाँ सोचरी थीं, सावित्री राजकुमारी है, जन्म से राजसुख भीगती श्राई है, तपोवन के छेश से उसकी ऐसी दशा है। वे सब दया से द्रवित होकर जब घर के काम में सावित्री की सहायता करने ग्राती थीं तब सावित्रो हाथ जोड़ कर बड़े विनय भाव से उन्हें रोकती थी। सावित्री की सास वह देख कर कि बेटे पतोहू में ब्रनुराग पूरा है तो भी वहु सोच से दिन दिन दुवली होती जाती है, विस्मित होती थी । इसका कारण उसकी समक्त में न ब्याता था। ऋषिपत्रियों की भाँति वह भी यही समस्तदी थी कि

त्योगन के कप्ट से ही वहू इस तरह सूखी जा रही है। सावित्री आश्रमक्षित एक साखू के पेड़ में दूसरे की झाँख बचा कर प्रति दिन् सिन्दूर की लकोर खींचती थी। उसकी बूढ़ी सास देखती थी, वहू बीच बीच में सहसा घर का काम छोड़ कर लकीरें गिनने जाती है

बीच बीच में सहसा घर का काम छोड़ कर लकीरें गिनने जाती हैं। कीर वहां से आंसू बहाती हुई जीट कर फिर अपना काम करती हैं। वह इसका मजलब नहीं समम्भती थी । वह यही सोच कर जुप हो रहती थी कि साविजो ने पिता के घर में कोई ब्रव ठाना होगा, वहीं सालू के पेड़ में सिन्दूर की लकीर खींच कर गिना करती हैं। वह प्रति दिन इष्टदेव से प्रार्थना करके कहती थी, ''भगवन! मैं अपने लिए कोई सुख था कोई भोग नहीं चाहती हैं। अगर आपकी छुपा

मुभ्भ पर हो तो मैं वही चाहती हूँ कि मेरी मुशीला वधू सावित्री शास्त्र देश के सिंहासन पर बैठे। मैं पहले यह घपनी घाँखों देख खूँ दव मरूँ।' इस प्रकार सास-समुर की सेवा में रहकर सावित्री का दिन सुख दु:ख से बीवने लगा। योंही दिन पर दिन बीवते बीवते वर्ष पूरा हो चला। नारद ने

यों ही दिन पर दिन बीतते बीतते वर्ष पूरा हो चला। नारद ने जिस सपङ्कर रात में सलवान की जीवनलीला समाप्त होने की बात कहीं थी, वह समय समीप आ पहुँचा। सानित्री ने अपने पित की खुख होने के तीन दिन पूर्व ही से त्रिरात्रीपनास त्रव आरस्भ कर दिया। राजा बुमत्सेन ने सानित्री के इस कठोर त्रत ठानने की बात खुनकर उससे कहा—"बहुजी! तुसने बड़ा ही कठिम त्रव ठाना है,

तीन दिन बिना अन्न जल के रहना बहुत कठिन है। तुम्हारा सुकु-सार शरीर क्या ऐसा कठेार कष्ट सहने योग्य है ?" सावित्री ने ऋहा---''आप विन्ता न करें, आप के आशीर्वाह से कठिन होने पर भी में इस त्रत को वड़ी श्रासानी से पूरा कर लूँगो।" क्रमश: नारद का बताया हुआ वह दिन आया। सावित्रो ने ख़ूव तड़के उठ कर प्रात:कृत्य से निश्चिन्त हो धधकती हुई आग में यथा-विहित हवन किया। आश्रम के निवासी तपस्वीगण और उसके सास ससुर ने "सीमाग्यवती भव" कह कर आशीर्वाद दिया। सावित्रो ने "तथास्तु" कह कर मन ही मन गुरुजनों के उस आशीर्वाद को अहण किया।"

इसी समय सरावार स्वी लकड़ी लाने के लिए कन्धे पर कुल्हाड़ी रख जड़क को रवाना हुआ। सावित्रों उसके साथ जाने के हेतु उचत हुई। यह देख कर उसके सास-समुर ने स्नेह भरे स्वर में कहा—"तीन रात के उपवास से तुम स्व कर काँटा हो गई हो, जड़क का रास्ता बड़ा ही वीहड़ हैं। कहीं कँची नीची जमीन हैं, कहीं काँटे ही काँटे हैं। सरयवार धभी लीट आवेगा। तुम आज उसके साथ वन जाने का विचार न करे।।"

सावित्री ने बड़े विनीत भाव से सास से कहा—"मां, मैंने जो व्रत किया है, उसमें स्वामी के साथ सदा रहने का नियम है। वन जाने में मुभे कुछ क्षेत्र न होगा। श्राप अनुप्रह करके मुभे स्वामी के साथ वन जाने की आज्ञा दीजिए।"

सावित्री की विनयवाधी सुन कर सास-ससुर ने उसे वन जाने की आज्ञा दे दी। सावित्री प्रसन्न मन से सत्यवान के साथ वन गई । वन की शोभा देख कर दोनों के हृदय थानन्द से उमग उठे। कहीं मांति भांति के जङ्गली फूल खिले हुए हैं, जिनके सुगन्य से चारों ओर आमोदिव हो रही है, कहीं पूँछ पसार कर मयूर-गळ नाच रहे हैं, कहीं फुंड के फुंड हिरन स्वच्छन्द होकर धूम रहे हैं। ये सब दृश्य देखते हुए दोनों आगे वड़े। कीन जाने, कव क्या होगा, इस मय से सावित्री के प्राख चळ च्या में उड़ रहे थे। किन्तु सत्यवान् यह नहीं जानते थे। वे कमी सावित्री को जङ्गल की ग्रोमा दिखलाकर कमी जङ्गली-पशुओं की छोते वर्धन करके खीर कमी उसके साथ प्रीतिपूर्वक रहस्य संमापण कर उसके ' मन को बहला रहे थे। एक वार उन्होंने कहा-

"प्रिये! में वारबार सोच कर भी इसका निश्चय नहीं कर सकता कि तुमने क्या देख कर मेरे सहश तुच्छ व्यक्ति की पित बनाया।"

साविजी---''प्राणनाय ! यदि आप की होते तो आप इस बात की सम्बन्ध सकते । पुरुष होकर रमखी के मन का भाव आप

कैसे जानेंगे ?"

सखनार----''ग्रुभ्मसे ज्याह न करके यदि तुम दूसरे राजकुमार के साथ ज्याह करती तो तुम्हें भाज इतना क्षेत्र नहीं होता। मेरे दुर्भाग्यदोष से तुम एक दिन भी सुखपूर्वक न रह सर्की। मैं तुमको कोई सख न दे सका।'"

सावित्री---''नाथ ! क्या रोज़ रोज़ यहाँ एक वात कहिएगा ! मैंने कई बार आपसे विनती की है कि ग्रुक्त से यह बात न कहिए । ऐसा आप क्यों कहते हैं ? ग्रुक्त किस बात का दुःख है ? धन-रक्त का ? आपकी प्रेम-सम्पत्ति पाकर में अपने की इन्द्राखी से भी वढ़ कर भाग्यवती समफती हूँ । जियां भूष्या क्यों पहनना वाहती हैं ? खाभी के मन को रिप्ताने के लिए । जब विना गष्टने के ही
में आपके मन को लुभाने रहती हैं वब विदे सारे संसार के राजाओं
की सम्पत्ति इक्ट्री की जाय तो उसे मैं आपके चरव की यूल की
एक कहा के बराबर भी न सम्पूर्णिंग।"
सातवान ने बड़े प्यार से जुलों को खाती से लुगाया और
कड़ा—"व्यारी । में युवार्ष में बढ़ा भाग्यवान है. नहीं हो हम्हारी

साविजी ।

şşų

सी स्ती-जा गुम्मे कहाँ मिसवी ?"

सामने एक सूखा पेंडु देख कर सत्यवाद उसे काटने की उदाव हुआ। दी एक वार कुल्हाड़ी चलाने के साव उनका जी धूमने सुगा और सारा अधीर क्षीप क्षणा। अवस्थान दाख्ड पिरापीड़ा ने उन्हें अचेवन कर दिया। उनकी श्रीखें के सामने गारों अंगर

श्रन्यकार छा गया। वे खड़े न रह सकी, पत्नी से कहा कि ''हुमें शोध सँमाले।'' हतना कह कर वे गिरने को ही हुए कि सावित्री पहले ही से सावधान थी, उसने भट पति को होनों हायों से पकड़ कर गिरने से बचा जिया और छाती से लगा कर पेड़ के नीचे ले आहे। वहाँ उन्हें बीरे धीरे लिटा उनका सखक अपनी गोद में रख कर

वहां ज्यू बार धार लिटा उनका सत्तक प्रभान गांव स रख कर आंचल के बल से जनके हुँई पर हवा करने लगी। शिरोबेदना से अवलन व्यविद्ध होने के कारास स्वामी का हुँई हतना ज्यस्स हो गया जिस्से वह न देख सकी, बोझी देर के लिए उसने शींकें क्यू कर लीं। आंख खोलते ही उसने देखा, सल्यान काठ की तरह निरुपेष्ट एका है, नाक के पास हाथ रख कर देखा, सांस नहीं, हृदय निस्पन्द श्रीर श्रांखें पलक-रहित हो गईं। सावित्रो समक्ष गई, नारद का वाक्य सत्य हुआ।

संसार में ऐसा कौन कवि, या चित्रकार है जो सावित्री की उस समय की अवस्था का वर्शन कर सके या चित्र खींच कर उसकी त्रसली दशा दरसा सके । वनभूमि खभावतः भयानक होती है। संध्या का समागम होते ही उसने ग्रीरं भी भयानक रूप धारण किया । थोड़ी ही देर में चारों स्रोर गाढ़ स्रन्धकार छा गया । मानी सारा जङ्गल प्रन्थकार के समुद्र में डूव' गया । वातचीत करते करते वे दोनों आश्रम से बहुत दूर निकल आये थें। वह स्थान ऐसा निर्जन था कि कहीं मनुष्य की बोलीतक सुनाई न देती थी। कंभी कभी दूर से वन्य पशुत्रों का भीषण चीत्कार सून पड़ता वा श्रीर हवा की भोंक से पेड़ों के परस्पर संघर्पण होने के कारण एक विचित्र ही विकट शब्द उत्पन्न होता था। किन्तु सावित्री स्राज निर्भय है। उसके सभी मनोरय श्रीर सुख की कामनायें भङ्ग हो गई हैं। इसलिए ग्रव उसे भय किस वात का हो ? उसके नेत्र में झांसू नहीं है, मानो वह हृदय के ताप से वीच ही में सूख जाने के कारण आँखों तक आने नहीं पाता। उसकी साँस भी रुक रुक कर चलती है। हा! जिस राजकुमारी ने कभी दुःख का मुँहतक न देखा था, वह ग्राज एक निर्जन वन में रात को ग्रकेली ग्रपने सुत पति को मस्तक को गोद में लिये वैठी है। इससे वढ़ कर शोक का ग्रव-सर और क्या होगा ? इसी अवस्था में उसने पास ही एक पेड़ के नीचे एक अपूर्व मूर्त्ति देखी। घोर अन्धकार में भी वह उसे स्पष्ट देख पड़ी। वैसी श्रद्भुत मूर्ति श्राज तक उसने कभी न देखी थी।

श्रिविक ध्यान देकर देखने से जान पड़ा कि वह मूर्ति केवल एक छाया मात्र है। अङ्ग-प्रसङ्ग रहने पर भी उसके और मनुष्य के त्राकार में वहत भेद हैं । सावित्री ने सीचा, क्या मैं यह स्वप्न देख रही हूँ, परन्त कुछ ही देर में उसने देखा, यह मर्चि सत्यवान के निश्चेष्ट शरीर के समीप खड़ी है। स्वप्न का सन्देह जाता रहा। उसने वेदान्त पढते समय[ः] नाचिकतेषपाख्यान में जो मृत्य देवता की कथा पढ़ी थी, क्या यह वही कालपुरुष तो नहीं हैं ? सावित्री ने मन में सोचा, यदि वे हों तो अच्छा ही है। इधर वह छाया-मयी मुर्चि इस तीव दृष्टि से सावित्री की ब्रोर देख रही थी कि वह स्थिर न रह सकी। वह धीरे धीरे खामी के मस्तक को गोद से नीचे उतार कर उठ खड़ी हुई श्रीर हाथ जोड़ कर वड़े विनीत भाव से उस मुर्चि से पूछा-- "श्राप कीन हैं ? श्रापकी श्रमानुषी मूर्त्ति देखने से जान पडता है जैसे आप देवता हों, आप मेरा प्रशास शहरा कीजिए और अपना परिचय दीजिए कि आप कौन हैं, किस लिए यहाँ श्राये हैं ⁹"

. छायामयी मूर्त्ति ने कहा—"मैं यम हूँ, तुर्न्हारे स्वामी सख-वान की ब्रायु पूरी हो गई। इसी से मैं उसे लेने ब्राया हूँ।"

यह कह कर यम धीरे धीरे सखतान के निश्चेष्ट शरीर की खीर अप्रसर हुआ। सावित्री ने देखा, यम का स्पर्श होते ही सखनान की देह से एक अपूर्व पुरुष के आकार का तेज निकला श्रीर साथ ही जसके सखदान का शरीर विवर्ष श्रीर डरावना सा हो गया। यम जस अब्सुष्टप्रिमाण तेजामय पुरुष को पकड़ कर हिंचण दिशा की श्रीर लेचला। सावित्री भी उसके पीछे पीछे

चलो । कुछ दूर भ्रागे जाकर यम ने देखा, सावित्री उसके पीछे भ्रा रही है। तब उसने कहा—''सावित्रो तुम लीट जाग्रे, भ्रपने खामी का दाह कर्म भ्रादि करे। ।"

सावित्री—''मेरे स्वामी को आप जहां लिये जा रहे हैं, मेरा भी वहीं जाना उचित है। पण्डितों ने गृहस्थ-धर्म के पालन ही को ज्ञानलाम का प्रधान सोपान वतलाया है। मैं ज्ञानलाम की आशा से स्वामी के साथ गृहस्थयन्में का पालन कर रही थी। आप धर्म-राज होकर अचानक मेरे पति को लेजाकर मेरे धर्माचरण में वाधा डालना चाहते हैं ? जहाँ आप मेरे स्वामी को लिये जा रहे हैं वहाँ सुभे भी ले चलिए।"

यम—"सुशोलें ! मैं तुन्हारी शुक्तियुक्त धर्म्मसङ्गत बात से बहुत प्रसन्न हुम्मा । सरावान् के जीवन से भिन्न तुम जो वर माँगोगी वह मैं तमको दूँगा।"

सावित्री ने ससुर का अन्धापन दूर होने की प्रार्थना की। यम "तथास्तु" कह कर आगे वहा और सावित्री से कहा कि तुम मार्ग चलते चलते थक गई, अब लीट जाओ।"

सावित्री बोली—''जब मैं अपने खामी के पाय हूँ तथ मार्ग चलने का कुछ छेश मुक्ते नहीं है। स्त्रामी ही मेरे एक मात्र गति हैं। श्राप जहाँ इनको लिये जा रहे हैं वहाँ मुक्ते भी जाने की ब्राहा कीजिए।" साधुजनों की संगति कभी ज्यर्थ नहीं होती, इसलिए जब भाग्य से प्रापके दर्शन हुए, तब ब्रापका साथ छोड़ना उचित नहीं, आपकी छुपा से मुक्ते पति की सेवा करने का भी प्रवसर मिलेगा।"

.यस—^{। प्}हितं मनोहारि च हुत्तंमं क्च:" कुन्हारी मक्षर तथा हित की बात सुन कर सुमों बड़ी रहिंग हुई। तुम सत्यवान के जीवन से भिन्न जी वर चाही, मौती ।"

सावित्री ने ससुर की फिर से राज्य प्राप्त दोने की प्रार्थना की । यम ने नहा-"ऐसा ही होगा।"

इसके अनन्तर साविधी ने फिर प्रिय वचन से यम की प्रसन्न करके उसीसे ''पिता बहुपुत्रवान् हों'' यह दीसरा वर मांता ।

यम ने यह बरदान भी दिया। तेा भी सावित्री नहीं लीटी देख कर उसने उससे बहा--''राजकुमारी ! तुन्हारी सव कामनायें' पूर्व हुईं, अब हुम घर लीट जाग्रेग । वाती में उत्तम कर हुम बहुट दूर आगई' ।"

सावित्री—"जद मेरी धाँखें। वे सामने मेरे सामी विराजमान हैं तव में बहुत दूर कैसे छाई। यह दूर कैसे हुआ। मैं इनके साथ दूरातिदूर जाने की तैयार हूँ । जाप निष्णचपात होकर धर्मपूर्वक प्राखी सात्र का शासन करते हैं इसीसे आपका नाम धर्माराज प्रसिद्ध है। आप साधु हैं, साबु के ऊपर विश्वास करने से कभी घोखा खाना नहीं पहता। इसी लिए में आपके ऊपर विश्वास करके आपके साथ चली हूँ ।"

यम—''प्रियवादिनी ! मैं तुम्हारे मुँह से जैसी मीठी बात सुन रहा हूँ, कमी किसी के मुँह से न सुनी । सत्यवार के जीवन के त्रविरिक्त तुम वी वर मींगना चाही भौगली।"

सावित्री बोली--"यदि श्राम प्रसन्न हैं तो मुक्ते यह वर दीजिए, जिसमें मेरे गर्भ से मेरे पति सलवान के एक सा बिलाइ पुत्र **उत्पन्न हों**।"

यस—''भ्रष्छा, वहीं होगा। त्रव तुस खैाट जाग्रेा, युषा परिश्रम उठाने की स्रावश्यकता नहीं।''

सावित्री—"धर्मराज ! में प्रव फुवार्ष हुई, मेरा मनेारथ सफल हुत्रा। किन्तु विना पित के में किसी सुख सम्पति, यहां तक कि स्वर्गलोक की भी श्रभिलापिक्षी नहीं हूँ। श्रापने मेरे सौ पुत्र उत्पन्न होने का वर दिया है, इधर मेरे पित को श्राप लिये जा रहे हूँ, जिसमें श्रापका वाक्य सहा हो सो कीजिए। सहावान को न जिलाने से श्रापका वरदान कैसे फलित होगा ?"

यस—"सर्वाशिरोमिया ! मैं अब समक्त गया । सती के समीप मृत्यु को मी हार माननी पड़ती है । यह लो, अपने स्थामी को ले जाओ । मैं तुम्हें आशोबीट देता हूँ, तुम पति के सुख से सुखी होकर पुत्र-पात्रादि के साथ सुखपूर्वक जीवन न्यतीत कर अन्त में पतित्रता का लोक प्राप्त करे। ''

यह कह कर यमराज सखनान के शरीर से निकाले हुए उस तेजोमय पुरुष की सावित्री के हाथ में सौंप कर अन्तिहित हुए। सावित्री भी उन्हें प्रशाम करके जहां सखनान का शव था, आई। उस तेजोमय मूर्ति का स्पर्श होते ही सत्यवान के शरीर में पुन-जीवन का सन्धार हुआ। उन्होंने आंख खोल कर सावित्री से कहा—"प्यारी! देखें।, मैं शिरापीड़ा से ज्याकुल हो गाढ़ निद्रा में सो गया था। इतनी रात हो गई, तुमने सुक्को जगा क्यों नहीं दिया?"

सावित्री—"ग्रापको ग्रस्तस्य देख कर मुभी ग्रापको जगाने का

ताहस नहीं तुमा। इसमें थारों श्रीर इस अन्यकार में अञ्चली हिंस जन्तु पूम रहें हैं, इसके श्रीच से हैक्सर जाना टीक नहीं ! श्रात हम श्रीर आप किसी तरह यहाँ रात विवादने ! कह समेरे ही आश्रम की जाएँगे !!

इधर धर्मराज के वर से राजा शुमत्सेन को धाँखें भिक्त गईं। इस ब्राकिसमा सौसान्य से उनके ब्रीप रानी के ब्रानन्द तथा ब्राह्मर्थ की सीमान रही। किन्सु बेटे बीर पतेन्हू के जङ्गल से त्रालं में विखस्य देख हे दोनों यह ज्याखुल हुए। त्रपेवन के लोग उन्हें अनेक प्रकार से सान्त्वता देने छगे। उस देतीं ने जग कर रात विवाई। भार होते ही सावित्री और सत्यवान आश्रम में बा पहुँचे । सीचे हुए रह की पाकर जैसे रंक आमन्दित होता है, वैसे ही रानी कीर राजा, बेटे-पतोह की देखकर ब्रानन्दित हुए । ब्राजम-निवासी ऋषिमुनिगम् धुमत्सेन की श्रक्तभात् ऋष्य होते देख माअर्चान्वत हुए छे । इस समय सार्वित्रो से मुँह से सब इन्तान्त सुन कर वे लोग उस पतिज्ञता की बार बार धन्यवाद देने लगे। -यमराज ने कहा था कि शुभत्सेन फिर अपना क्षेत्रया हुआ राज्य पविगा। उसको बात शीध ही सफला हुई। शुमत्सेन के एक विश्वासी मन्त्री ने युद्ध में शत्रु की पराजित कर किजब प्राप्त किया। जनको राजधानी में हो जाने के लिए पुरवासियों के साथ तपावन में वर्गाखत हुआ। राजा धुमत्खेन द्यार उनकी रानी ने ऋषि द्यार अविभिन्नियों से आसीस हैं कैंदे तथा पत्तेहूं के साथ राजवानी की प्रथाया किया । साता-पिता की इस्तुमति से सत्यवान . सिंहासन पर धारुद् हो सावित्रों के साथ वहें ब्रातन्द से राज्य का सुक्त शेगने

- पतिद्यता । १३२
- लगे। यमराज के वरदान से सावित्री के पिता धवपति ने भी वह-

पुत्रलाभ से अपने जन्म को सार्थक समभा। सावित्रों के पानित्रत धर्म से सभी के मनेराय सफल हुए। जो लोग धर्म की रज्ञा करते हैं, उनकी विपत्काल में धर्म ही सहायता करता है।

पाँचवाँ ऋाख्यान

सा से वार के नाम से प्रशिद्ध है, वह पूर्वकाल में विवर्ध स्ट्रास्ट्रास्ट्रास्ट नाम से पुकारा जाता था। किसी समय वस विवर्ध देश में भीमदेव नाम का एक प्रजादिवेगी राजा राज्य करते थे। कृष्टिनपुर एकको राजधानी थी।

विदर्भ देश धन-सम्पत्ति में भारतक्ष्य के सब देशों में बढ़ा चढ़ा था। वेशी कोई कतत्व नहीं जो विदर्भ में उरश्व न हो। व्य के भीतर जभी खेतों की ओर रिट दोडिंग कभी धान के फेड़ से खेत हरे भरे नज़र आवें। विशेष कर शरद ऋतु में वहाँ के खेतों की शोमा का वर्षेत्र मही हो सकता। स्थासताङ्गी प्रकृति धमने समस्य साम्य में सम्ब अन्त में मानो हमें विशालों की विकरीनत कियो

भारतमा भा भयप भाग है। उनका रियाओं की विकसित कियें सपुर हास्त्र से उस श्रुतु में मानी दसें दिशाओं की विकसित कियें रहती यो। तासी, मड़ा और पूर्व ध्रांति नदियों ने अनेक मार्ग से प्रवाहित होक्तर विदर्भ भूमि को सुजला और सुभक्ता बना रक्का

था। विदर्भदेश के निवासीत्था वह परित्रमी और साइसी होते थे, इस कारव वहाँ पर पर में क्समी विराजमान थो। राजा भोम के ऐथवें की सीमा न थो। किन्तु अनुस्र ऐथवें रहने ही से स्था ? यदि चसका भोगाने वांता कोई उत्तरपिकारी

सुपुत्र न रहा। डेर के डेर मधि-मोतियों से उनका घर जगभगाता

या, किन्तु बालक-वालिकाओं की मीठी मीठी मुसकुराहट से वह कभी मुरोसित न होता था। गायक-गायिकागण वहाँ नित्य गान
करते थे किन्तु वधों की तोतली बोली से वह स्थान कमी मुधासिश्चित नहीं होता था। उनके सभागृह में नर्तक नर्तकीगण नाच
करके लोगों का मनेर कन करते थे; किन्तु बालक वालिकाओं के
लेल-कूद से वह कभी विनोदमय नहीं होता था। बहुत परिजनों
के वीच में रह कर भी रानी और राजा अपने की वन्यु-बान्धवविद्वीन समक्षते थे और कभी कभी उनके जी में होता था कि इस
गूर्य राजमवन के निवास से वन में जाकर रहना अच्छा है।

यों ही बहुत दिन वीतने पर दमन नाम के एक सुनि राजा भीम के यहाँ थाये। राजा और रानी ने पूर्ण रूप से उनका आतिथ्य सत्कार किया। उन दोनों दम्पती की मिक्त और सेवा से प्रसन्न होकर विदा होने के समय सुनि ने राजा से कहा—"महा-राज! मैं आपकी और आपकी रानी की मिक्त से बहुत सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद करता हूँ। आपके तीन पुत्र और एक कन्या-रह्म उरमन्न होंगे।"

मुनि के वरदान से रानी ने क्रमशः तीन पुत्र श्रीर एक कन्या प्रसव की। दमन मुनि के अनुप्रह से ये सन्तानें उत्पन्न हुई थीं इसिलए राजा ने पुत्रों के नाम दम, दान्त ग्रीर दमन रक्खे। कन्या का नाम दमयन्ती रक्खा। सुन्दर कुमारों ग्रीर राजकुमारी की देख कर राजा ग्रीर रानी ने श्रपने की कृतकुत्य माना।

विदर्भ की राजकुमारी रूप गुण के लिए सदा से प्रसिद्ध थी। अगस्त्य सुनि की पत्नी लोपासुद्रा इसी विदर्भराजकुल में उत्पन्न दुई

रमयन्ती । १३५ थी । महाराज रघु की पुत्रवधू अज की धर्मपत्नी कमलकोमलाङ्गिनी इन्द्रमती ग्रीर लन्सीस्ररूपा क्षिमणी देवी ने भी इसी विदर्भराज के दंश में जन्म लिया था। इसलिए दमयन्त्री की रूप गुरू में श्रीर राजकुमारियों से वढ़ जायगी यह कुछ श्रसम्भव न था। किन्तु दमयन्त्री को देख कर विदर्भ देश के बढ़े बढ़े वहें लोग भी कहते थे कि "ऐसी सुन्दरी लढ़की इस वंश में कभी उत्पन्न नहीं हुई थी।" दमयन्तों ने जब क्रमशः यौद्यन की सीमा में पैर सक्दा तब राजा ने उसके रहते के खिए महल के भीतर एक खतन्त्र घर दे दिया। दमयन्ती वहाँ सली सहेलियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगी। वह कभी सखियों के साथ महल के भीवर के पेखर में जलकोडा करती, कभी फुलवाडी में घुमने जाती और कभी हरि-मन्दिर में बैठ कर शास्त्र-पुराख सुनती थी। दमबन्ती की सखियाँ उस पर वडी प्रीति रखती थीं । वे गानवाद्य श्रीर मीठी वातें से सदा उसका जी वहलाती थीं । राजधानी में धनवान वसवान श्रीर धर्मातमा स्नादि प्रसिद्ध व्यक्तियों की बातें चलती ही रहती हैं। कहाँ किस धनाट्य ने एक अनुपम बाग लगाया है। किसने कीन वहसत्व घाडा या हाथी मोल लिया है, किस राजकमार ने श्रह्मपरीचा में सबको परास्त किया है और कहाँ किस राजा ने यह करके अपना सर्वस्व आग्रामों को दे दिया है। राजा के अन्तः पुर में रहने वाली स्त्रियाँ इन्हों सब वातों की जेकर ग्रापस में वाते किया करती थीं। उन अनेक प्रसिद्ध लोगों के वीन्द एक व्यक्ति का नाम दमयनती की नरावर सुन पडता था। ग्रसाधारण काम से लेकर साधारण काम तक

श्रनेक विपयों में लोग उनका नाम लेते थे। यदि किसी ब्रह्मज्ञानी या वेदवेदान्त के जानने वाले व्यक्ति की वात छिड़ती थी ता राज-पुरेहित फट बोल उठते थे, "इस विषय में निपधदेश के राजा नल की वरावरी करने वाला कोई नहीं है।" यदि किसी राजा की सत्यिनिष्ठा की बात चलती थी तो राजसभा के सदस्य कहते थे--''राज्यशासन के लिए कीन ऐसा राजा होगा जा दी एक भूठी वात न बीलता होगा, परन्तु, राजा नल ही एक मात्र ऐसे राजा हैं जो कभी किसी के साथ भूँठ नहीं वेलिते।" यदि किसी सारिय को रय चलाने में ब्रुटि होने के कारण उसे फटकार बताई जाती थी तो वह यही कहता था-"मैंने महाराज नल के यहाँ सार्ध्य का काम किया है। महाराज ने खयं मुक्तको घोड़ा हाँकने की शिचा दी है। सारंध्यकार्य में उनकी समता करने वाला कोई नहीं है।" यदि रानी किसी रसोइये से अधिक वेतन मांगने का कारण पूछती थी ते। वह कहता था, मैं तीन वर्पसे श्रधिक समय तक महाराज नल के यहाँ प्रधान रसीह्या था। महाराज ने खयं समको रसोई बनाना सिखढाया है। अगर मैं आपको और महाराज को रसोई जिमा कर राप्त न कर सकूँ ते। आप एक पैसा भी सभी वेतन न दें ।''

छम्न बढ़ने के साथ दमयन्त्री मन ही मन सोचती थी, जिस माननीय महापुरुप की प्रशंसा में इतने दिन से सुनती हूँ, वे कैंगन हैं ? ब्रह्मज्ञानी की चर्चा चलती हैं, तेा लोग छन्हीं का पहले नाम लेते हैंं। प्रजावत्सल राजाओं में वही सुख्य गिने जाते हैं। सारिथ इनसे अध्यचालन-विद्या सीख कर छपने की परम प्रविधित मानता है। पाककर्ता उनसे रसोई वनाना सीख कर अपना महस्व प्रकट करता है। वे सर्वगुराभूपित व्यक्ति कीन हैं ? क्या वे इतिहासोक्त प्राचीन काल के कोई महात्मा हैं या आधुनिक कोई दर्शनीय पुरुष हैं ? जो कोई हो वे मेरे वन्दनीय हैं।" इस प्रकार नल को न देख कर, कोवल लोगों के मुँह से उनकी प्रशंसा सुन कर दमयन्ती को उन पर स्वासाविक मक्ति उत्पन्न हुई।"

एक दिन महल के भीतर एक तपस्विनी आई'। वे बाल-ब्रह्मचारियी थीं। वेदवेदाङ्ग का तत्त्व जानने वालीं ध्रीर तपश्चर्या के प्रभाव से श्रप्तिशिखा के सदश तेजिखनी थीं। वे तीर्थपर्यटन कर रही थीं। राजा भीम और उनकी रानी के धर्माचरण की प्रशंसा सुन कर वे उनको दर्शन देकर कृतार्थ करने आई थीं। **उनके श्राने की ख़बर पाकर श्रनेक पुरवासिनी श्रीर राजा के** महल की खियाँ देवालय में उनसे मिलने गईं। तपखिनी उन सवों से अपने तीर्थ असण का वृत्तान्त कहने लगीं। उत्तरीय हिमालय के बर्फ से ढँके हुए शिखर पर उन्होंने किस तरह गैारी-·शङ्कर की श्राराधना की थी, (जो स्थान श्रव भी उनके नामानुसार गैारीश्टङ्ग के नाम से विख्यात है) दक्षिण समुद्र के किनारे जहाँ भगवती की कुमारी सूर्ति स्थापित है, जहाँ महासमुद्र फेनरूपी खेत पुष्पाश्वलि से दिन रात देवी की पूजा करते हैं, वहाँ का युत्तान्त श्रीर उत्तर हिमालय से दिच्य क्रमारी श्रन्तरीप तक भारतवर्ष के कितने ही तीर्थों की कथा उन्होंने कही। पुरवासिनी खियों ने जी लगा कर बड़े श्राश्चर्य भाव से उन सब तीर्थों का माहात्म्य सुना। पश्चात् विनयपूर्वक तपस्विनीजी की प्रणाम करके सब अपने अपने

घर गईं। केवल रानी, दमयन्तो भ्रीर उनकी दे। एक दासी वहाँ रहीं। तपितनी ने दमयन्तो की भ्रीर लक्ष्य करके रानी से कहा— "यह जी सकल सुलचेशों से युक्त कुमारी तुम्हारे पास वैठी है, यह तुम्हारी कीन होती हैं ?"

रानी--''यह मेरी वेटी है। दमन सुनि के आशीर्वाद से मैंने यह कन्या पाई है, इसीसे इसका नाम दमयन्ती रक्ता है।"

माता का इशारा पाकर दमयन्तो ने तपिखनी का पैर छूकर प्रयाम किया। वपिखनी नं उसे आशीर्वाद देकर रानी से कहा—
"तुम भाग्यवती हो, जिससे ऐसी कन्यारत प्रसव की है। इस आदर्श कन्या के गुख से तुम्हारा वंश चिरस्मरणीय होगा। देखती हूँ, लड़की व्याहने योग्य हो गई। क्या कहां इसके व्याह की यात स्थिर न सुई है ?"

रानी---''नहीं, श्रभी ते। स्थिर नहीं हुई है। यही एक लड़की है। कहां, किसके हाथ इसे दूँ, इस चिन्ता से हम थ्रीर महाराज दोनों नरावर उद्विम रहते हैं।"

तपस्तिनी—"में बुम्हारी कन्या के योग्य एक सर्वगुषी वर वता सकती हूँ। मैंने कितने ही देश देखे हैं। कितने ही राजा और राजकुमारों से मेरी जान पहचान है। किन्तु कुल, शील, धन, विद्या श्रीर वल में इस कन्या के योग्य वही एक राजकुमार मेरी दृष्टि में सर्वोत्तम जँचता है।"

रानी बत्सुक होकर वोली—"चे कौन ?" तपित्वनी—"चीरसेन के पुत्र निषयदेश के राजा नल ।" रानी—"इस सब भी बहुत दिन से बनका नाम सुनती हैं, किन्तु वे कदाचित् इस सम्यन्ध को स्वीकार न करें, इस भय से महाराज जनके पास दृत नहीं भेजते।"

तपस्विती—"वेटी! जा ब्रह्मचर्य ब्रत धारण करेंगे, उनकी बात ही जुदी हैं, किन्तु जो ग्रहस्थ धर्म का पालन करना चाहते हैं वे तुम्हारी इस कन्या को कदापि अर्खीकार नहीं कर सकते। तुम्हारी यह कन्या केवल रूपवती ही नहीं है, इसके ग्रुँह पर जो अलीकिक भाव है, वह में ध्यान के समय केवल भगवती ही के स्वरूप में देखती हूँ, अन्यत्र कहीं स्राज तक देखने में नहीं आया।"

रानी—''यह मेरी लड़की है। इसकी प्रशंसा मुक्तको नहीं करनी चाहिए। पर श्रापका कहना सत्य है। ऐसी सुशीला, भिक्त-मती, सुगुद्धि श्रीर गुणवती वालिका मैंने भी नहीं देखी।''

तपस्विनी - "में तुम्हारे यहां से विदा होकर निषय राजधानी को जाऊँगी, यह पहले ही से मेरी इच्छा थी। राजा नल से मेरी जान पहचान है। यदि तुम्हारी सन्मति हो तो मैं वहां तुम्हारी कन्या के व्याह की बात प्रसंगवश चलाऊँ।"

रानी—"श्राप जो उचित समर्फेगी, उसमें क्या मेरी ग्रस-म्मति हो सकती है ? यदि श्रापकी कृपा से मेरी दमयन्ती सुपात्र के हाथ पड़े तो हम सब कृतार्थ होगी।"

तपस्विनी—''तो अब शीव्र ही यहाँ से विदा हूँगी। कल सबेरे में निषधदेश की यात्रा करूँगी।"

रानी और इमयन्ती तपस्विनी को प्रशाम करके श्रपने महल को ग्राई'!

उसी दिन से दमयन्ती के हृदय में ऋछ धीर ही भाव का उदय हुआ। जो दमयन्ती नल की मक्ति की पात्री थी, वह प्रव उनके श्रतुराग की पात्री हुई। जो इतने दिन नल की भक्तिमात्र से रुप्त होती थी वह भ्रव उनके दर्शन के लिए उत्सक होने लगी। पहले जो उसके मन में यह भ्रम था कि नल इतिहासप्रसिद्ध पूर्व-काल के कोई राजा होंगे, वह मिट गया। सत्यवादिनी तपरिवनी ने जो कहा है वह कभी व्यर्थ नहीं हो सकता। उसने मन में निश्चय किया कि वहीं (नल) उसके पति होने योग्य हैं। माता पिता की भी उसे नल के हाथ सींपने में कोई आपत्ति न थी; इस लिए ऐसी अवस्था में नई उन्न के धर्म से जो भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है, नल के ऊपर दमयन्ती का भी वही भाव उत्पन्न हुआ। नल की देखने श्रीर उनके सम्बन्ध की वात वार वार सनने की वह बड़ी श्रमिलापिग्री हुई । क्रमश: नल की चिन्ता ने सम्पूर्ण-रूप से उसके हृदय पर अधिकार कर लिया। दूसरी वात की चर्चा उसे न सुहाती थी। वह दिन रात नल की भावना में पड़ी रहती थी। वह यही सोचा करती थी, हाथ ! मतुष्य मतुष्य को विना देखे क्या उस पर इतना अनुराग कर सकता है ? मैं जिन पर अपने को समर्पेख कर चुकी हूँ, क्या वे एक बार भी मेरा स्मरण करते होंगे? स्मरण की कीन बात उन्होंने मेरा नाम तक भी न सुना होगा। हाय ! यह मैंने क्या किया ! एक श्रपरिचित व्यक्ति को क्यों श्रपना चित्त दे दिया ?"

कवियों का कथन है कि वियोगावस्था में प्रेमिक प्रेमास्पद का ध्यान कर तन्मय हो जाता है, यथा— "संगमितरहिवकत्य वरिमह विरहो न संगमस्तर्याः।

मिलने सैव यदेका त्रिभुवनमिप तन्मयं विरहे॥"

दमयन्तो प्रत्येक पदार्थ में नल की काल्पनिक मूर्ति देखती
थी। कोई कुछ वोलता था तो उसमें वह नल ही की बात सुनती
थी। वित्त की इसी अवस्था में उसने एक दिन अन्तरपुर की
उपवाटिका में एक विचित्रवर्य के इंस की पकड़ा। वह प्राय-भय से
अपनी जाति-भाषा में कुछ वोला। दमयन्ती ने समभा, वह नल
की कोई वात कह रहा है। इससे दयाई होकर उसने उसे छोड़
दिया। वह मधुर शब्द बोलता हुआ उत्तर तरफ़ उड़ चला। दमयन्ती ने समभा, "इंस उसका संवाद देने के लिए निषय देश को
जा रहा है।"

इधर तपिखतीं की मुँह से दमयन्ती के रूपगुण की प्रशंसा सुनकर नल भी तद्गतप्राण हो रहे थे। स्वभावतः संयतिचत्त होने पर भी कार्य करते समय उनका अन्तर्गत भाव प्रकट हो जाता था। बूढ़े राजमन्त्री ने देखा, राजा पहले की अपेचा अन्यमनस्क रहते हैं, उनका चित्त चच्चल रहा करता है। किसी कठिन प्रश्न के विचार में उनका जी नहीं लगता। रात में उनहें नींद नहीं आती। इसिलए किसी किसी दिन होम का समय टल जाता है। वे कभी कोठे की छत. पर अकले बैठकर चन्द्रमा की ओर टकटकी बाँध कर देखते हैं, कमी विना कारण के लम्बे सांस लेते हैं। उनके प्रसन्नमुख पर सदा उदासी छाई रहती है। वे दिन दिन दुर्वल होते जाते हैं। उनके ललाट पर चिन्ता का चिह्न और प्रांसे आंस् से भरी हुई दिखाई देती हैं। मन्त्री ने अनुमान किया, ये सब अनुराग

के लच्च हैं। किन्तु जितेन्द्रिय महाराज नल के लिए परस्रो चिन्ता ते। कभी संमव नहीं, तब महाराज जिस पर श्रापुरक्त हुए हैं वह भाग्यवती कुमारी कीन है ? वे कुछ निश्चय न कर सके श्रीर नल की दिन दिन राजकार्य में उदास देखकर वहुत ज्यम हुए।

तपस्विनी ने नल के विषय में जो वातें कही थीं, राजा भीम ने रानी के मुँह से सब सुनीं। किन्तु नल की उपयुक्त पात्र जानकर भी वे उनके पास कन्या के विवाह का प्रस्ताव न कर सके। उन्होंने रानी से कहा-"प्रिये ! याचक रूप से कन्यादान के लिए प्रार्थी होना हमारे कुल की रीति नहीं है। हमारे वंश की खड़की के साथ व्याह करने की प्रस्तावना भ्रापही राजा महाराजा करेंगे, उनमें जिसे मैं याग्य समभूँगा, उसे लड़की दूँगा।" यही हमारे वंश का नियम है। इसलिए में किसी के पास इस कार्य के लिए दृव[े] नहीं भेज सक्रेंगा, न किसी से में प्रार्थना ही करूँगा। ही, एक काम मैं करूँगा। मैं दमयन्ती के स्वयंवर की घोषणा करके भारत-वर्ष के प्रधान प्रधान राजाओं की उस स्वयंवर में बुला भेजूँगा। यदि नल दमयन्ती के साथ ज्याह करना चाहेंगे ता वे श्रवश्य ही यहाँ श्रावेंगे। यदि स्वयंवर की वात जानकर भी वे यहाँ न आवें तो उनसे इस कार्य की ग्राशा रखना नृघा है। स्वयंवर में ग्राये हुए राजाओं में दमयन्ती जिसे पसन्द करेगी, जिसके कण्ठ में वरमाला डालेगी हम उसी के साथ उसका व्याह कर देंगे।"

रानी ने राजा के इस विचार को पसन्द किया। भीम ने सभासद क्रीर मन्त्रियों को युहाकर स्वयंवर रचना की क्राङ्मा दी। वात की वात में राजकुमारी के स्वयंवर की वात सारे नगर में फैछ

गई। नगनिरवासियों के अपनन्द की सीमान रही। घर घर में मङ्गुलाचार होने लगा । स्वयंवर का सुयोग संयोग से संघटित होता हैं। इसिलए सफल साधारण लोग बड़े उत्सुक हो खयंवर देखने की प्रतीचा करने लगे। क्रमशः स्वयंवर में आये हुए देश देश के नरेश थ्रीर उनके अनुचरवर्ग से सारा कुण्डिनपुर भर गया। नगर के चारों श्रोर मैदान में हज़ारों ख़ेमे खड़े हुए। घोड़ों की हिन-हिनाइट, हाथियों की चिंघाड़, ग्रीर सेनागर्यों के कोलाहल से म्राकाशमण्डल प्रतिष्वनित होने लगा । घर घर में **उत्सव का चि**ह्न दिखाई देने लगा । तीरण वन्दनवार से सड़कें सजाई गई ! दूकानदारों ने वाज़ार को अनेक प्रकार की माँगलिक क्सुएँ श्रीर दीपमालाग्रों से विभृषित किया। सारी नगरी इस महोत्सव से एक श्रपूर्व शोभा की खान सी बन गई।

श्राज स्वयंवर का दिन है। राजभवन के सामने की सड़क पर लोगों की वड़ी भीड़ है। जिघर देखिए उघर ही फुंड के फुंड लोग दिखाई देते हैं। स्वयंवर देखने के लिए नगरनिवासी आवाल यद्ध सभी उचल पड़े हैं। निमन्त्रित राजा, राजकुमार, कोई हाधी कोई थोड़ श्रीर कोई रम्र पर चढ़कर बड़ी सजधज से राजभवन की धोर स्वयंवर के सभामण्डण को सुरोगित करने के लिए श्रा रहे हैं। उन लोगों की सवारी श्रीर भूषण वसन श्रादि नगरनिवासियों के आलोच्य विषय हो रहे हैं। किसका हाथी सब से ऊँचा है, किसका थोड़ा सब थोड़ों में तेज़ श्रीर सुन्दर है, किसकी पगड़ी श्रीर खुपट्टे कैसे मूल्यवान हैं, इन वातों को लेकर पुरवासीगण आपस में वादानुवाद कर रहे हैं। कोठ की छत श्रीर भरोले पर

खड़ी होकर पुरवधू फूलों की वर्ष कर रही हैं। साथ ही इसके देा एक नवयुवतियां टूटे दांत पके केश राजा की विवाहार्थी देख कर उनकी हैंसी उड़ा रही हैं। पहरेदार जहां तहां खड़े हो हाथ में बेंत की छड़ी लेकर बड़े कप्ट से शान्ति-रत्ता कर रहे हैं। प्रासाद के सम्मुख समतल भूमि में स्वयंवर का सभामण्डप वना है। सोने से मढ़े हुए विशाल खम्भों पर बहुत बड़ा सुन्दर शामियाना खड़ा है। खम्मे; भांति भांति के फूल-पत्तों और मालाओं से सुशोभित हैं। खयंवर का स्थान सुवासित जल से सींचा हुआ है। बीच में मार्ग है। मार्ग के दोनों श्रोर वहुमृल्य कुरसियों की कतारे लगी हैं। निमन्त्रित राजगरा अपनी चटकीली पेशाकों से दरीकों की आँखें में चका-चैंाघ पैदा करते हुए उन कुरिसयों पर बैठे हैं। इत्र श्रीर गुलाव के सुगन्य से सभागृह श्रामोदित हो रहा है। सुन्दर पोशाक पहने नवनयस्क नौकर मोरछल श्रीर चैंवर लेकर श्रपने श्रपने राजा के पास खड़े हैं और धीरे धीरे भल रहे हैं। राजद्वार के सामने नैवित-खाने में भाति भाति के मङ्गलवारा वज रहे हैं। कब राजकुमारी सभा में श्रावेगी, सब लोग सिर उठाकर उसी की राह देख रहे हैं। इघर महल के भीतर दमयन्ती स्वयंवर योग्य वेश-विन्यास कर माता को प्रणाम करके सभा में ले चलने वाली दासी के ध्याने का इन्तज़ार कर रही थी। इतने में एकाएक उसके घर का द्वार खुला श्रीर एक परम सुन्दर युवा पुरुष दूसरें। की श्रांख बचा कर वहाँ आ पहुँचा। उसके रूपलावण्य से सारा घर प्रकाशमान हो

ाया। उसे देख कर दमयन्ती की वड़ा श्राक्षर्य हुआ, उसने मन में सीचा, मनुष्यजाति में ऐसा रूप सम्मव नहीं। ये ज़रूर कोई देव- कुमार होंगे। यह सीच कर उसने ब्रागन्तुक को हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। ब्रागन्तुक दमयन्त्री के रूपलावण्य से विमुग्य होकर निर्निषेप नेत्र से उसको देखने लगा।

दमयन्ती वोली—"श्राप कैोन हैं ? कन्या के अन्तःपुर में श्रप-रिचित पुरुष का श्राना मना है। क्या श्राप यह नहीं जानते ?"

झागन्तुक—''मैं देवताश्रों की प्रेरणा से आपके पास आया हूँ। देवता का आदेश ले जाने वाले को कहीं जाना मना नहीं है। मैं जो कुछ कहने के लिए आया हूँ वह कह कर तुरन्त यहाँ से लीट जाऊँगा।''

दमयन्ती—''यदि देवताओं की सेरे प्रति कुछ आज्ञा हो ते। क्रमा कर कडिए।"

श्रागन्तुक—देवराज इन्द्र, श्रिप्त, धर्मराज श्रीर वक्ष्य श्रापके श्रुतुपम सीन्दर्श्य की वात सुन कर स्वयंवर के समामण्डप में इप-स्थित हुए हैं। उन्होंने श्रापसे यह कहने के लिए सुक्को मेजा है कि उनमें श्राप किसी एक को प्रति बनावें। कोई मानवी जिस सुख श्रीर जिस सीमाग्य की कभी श्रिधकारियी न हुई, वह श्रापको श्रामायस प्राप्त होता है।"

दमयन्ती—''देवदूत ! देवगण मेरे पूरूप हैं । मैं उन्हें हाथ जीड़ कर प्रणाम करती हूँ । साधारण मनुष्य की तरह कन्या की इच्छा करके वें अपने देवत्व को क्यों कलड्कित करना चाहते हैं ?''

श्रागन्तुक—''देवगय सदा से जातिषर्म की श्रार दृष्टि न देकर गुख के पचपाती हैं। इसीसे देवराज ने देख की वेटी शची से श्रीर श्रप्ति देव ने माहिष्मतीपुरी के राजा की वेटी स्वाहा से व्याह किया। श्राप चाहें तो शची श्रीर खाहा की माँति देवी का पद महण कर सकती हैं। कठिन तपस्या से भी जो स्वर्गसुख दुर्जभ है, उसका श्राप साग न करें। जब स्वयं देवगण प्रार्थी होकर आये हैं, तब उनका ग्रनादर करना उचित नहीं।"

दमयन्ती—''चमा कीजिए, बहुत बात बढ़ाने की ज़रूरत नहीं। आप देवताओं से मेरा प्रधाम निवेदन करके किहए, मैं पहले ही एक व्यक्ति को पितरूप से वरण कर जुकी हूँ। उनके लाभ की आशा ही से मैं अभी खयंवर में जाना चाहती हूँ। देवता, दानव या गन्धर्व जो हीं, अब किसी दूसरे को स्वीकार करने से मेरा स्तीत्व जाता रहेगा। देवगण धर्म के रचक हैं, जिसमें

में अपने संकल्पित पति पा सकूँ वे ऐसा ही आशीर्वाह करें।"
आगन्तुक का सुँह राहुमल चन्द्रमा की भाँति मिलन हो
गया। उन्होंने पूछा—"आपने जिनको मन से वस्या किया है, वे
कीन हैं, क्या उनका नाम मैं जान सकता हूँ ?"

दमयन्त्री— "श्राप देवदूत हैं। देवनाश अन्तर्यामी होते हैं। इसिलिए आपसे अपने मन की बात कहने में चित क्या ? मैं निषध-देश के महाराज नल की मन ही मन पितमान से स्वीकार कर चुकी हूँ।"

ध्रागन्तुक का चेहरा प्रातःकालिक कमल सा खिल गया। उन्होंने गृद्गद कण्ठ से कहा—"ध्रच्छा, मैं अब जाता हूँ। ग्राप का ध्रमिप्राय देवताओं से कहूँगा। मैं ही नल हूँ। देवताओं के ध्रनुरोध से मैंने उनका दूतल स्वीकार किया था ध्रीर उनका संवाद आपसे कहने ध्राया था।" इतना कह कर वे वहां से अन्तिहित हुए। उनके ब्राहरय होते ही माने। वर में अन्धकार छा गया। दमयन्ती ब्राश्चर्यान्वित होकर सोचने लगी—"यह स्त्रप्त है या देवमाया? यदि सचगुच ये नल ही हों तो इन्हें वरख कर में अपने जीवन को सफल समभूँगी।" इसी समय उसकी सखी ने ब्राकर कहा—"राजकुमारी! ब्रापको स्वयंवर में ले चलने के लिए ब्रापकी दासी वाहर खड़ी है, चिलए।"

टमयन्ती इष्टदेव की प्रणाम करके स्वयंवर-सभा की छोर चली ! शंखव्विन से सारा महत्त गूँज उठा । ख्रियाँ मङ्गलगीत गाने लगीं। भाँति भाँति को वाजे बजने लगे। वन्दीजन उचस्वर से स्तृति-पाठ करने लगे। सागध श्रीर सूतगण विदर्भराज का यश वर्णन करने लगे। शुस घड़ी में दमयन्ती खयंवर सभा में त्राई। भारत के प्रसिद्ध प्रसिद्ध राजा और राजकुमार समामण्डप में वैठे थे। स्वयंवर सभा के चारों ग्रेगर दर्शकों की ग्रपार भीड़ थी। सभी की हिष्ट एक दमयन्ती ही की द्रोर थी। दमयन्ती का हृदय काँपने लगा । उसके देानों पैर शिथिल से जान पड़ने लगे । वह इष्टदेवता का सारण करके धीरे धीरे श्रागे बढ़ने लगी। सभामण्डप में प्रवेश के साथ उस पर हज़ारों नेत्र एक साथ पतित हुए। सभी लोग टक-टकी बाँध कर उसकी अपूर्व शोभा देखने लगे। राजाओं ने देखा, ग्रागे पीछे ग्रह्मधारी वीरगण हैं, उनके बीच में माङ्गलिक वस्तुग्रे। को हाथ में लिये मण्डलाकार दासियाँ हैं। उनके मध्य में भूषण-वसन से सुसजित दमयन्ती ऐसी शोभा पा रही है, जैसी तारात्री के बीच में चन्द्रमा शोभा पाता है। दमयन्ती लाल रङ्ग की रेशमी साड़ी पहने हैं, ललाट में चन्दन का तिलक है। सम्पूर्ण शरीर रहा- जटित सोने के आभूपयों से विभूपित हैं। केश-पाश में फूल गुँधे हैं। हाथ में फूल की माला है। उसके अङ्ग की ज्योति से उसके सम्भूपया मिलन हो रहे थे।

माना तिय तन अच्छ छिन, खच्छ राखिने काज। रुग पग पेंछिन को कियो, भूपण पायन्राज॥ रमयन्त्री को देखकर राजाओं ने मन में सीचा, इतने दिन बाद

विधाता के हाथ का एक अपूर्व कौशल देखा। ख़ूब्स्ट्रती का तमूना अलग अलग है। परन्तु 'असली ख़ुब्स्ट्रती वही है जो पग पग में अल्ल की अपूर्व शोभा से टीट की अटका स्वस्ते। राजाओं ने दस-यन्ती का नही रूप देखा। सब यही चिन्ता करने लगे कि म जाने कीन साम्यवान पुरुष इस अनुषम कन्या-ल को पाकर कुताओं होंगे।"

जिस जगह से समस्त समासण्डण देख पड़ता था, जब दमबन्ती वहां जा खड़ी हुई तब राजपुराहिद ने दमयन्ती के पास
आकर आशीर्वादपूर्वक उससे कहा—"दुम्हारे पिता के बुलाने से
मासत के प्रधान प्रचान राजा इस स्वयंर-समा में जाये हैं। यह देखेा,
अङ्ग, वङ्ग, किल्डिंग, मिथिखा, कोशल, माम, काशी, गान्यार,
अवन्ती, पाच्चाल, मृह, कामरूप और सुराष्ट्र आदि देश के नरेश
दुम्हारे अनुपम रूपगुण की बात सुनकर दुम्हारे पाधिमहण के
प्रार्थी होकर यहां उपस्थित हुए हैं। तुम्हारे पिता को इम्छा है कि
इन आगत राजाओं में जिन्हें दुम योग्यतम जानो उनके गले में
वरसाला पहनाओं। शिचा, संयम और जताचरण के गुण से दुस
दिताहित के जान में कुशला हो, इसीलिए दुम्हारे पिता ने तुम्हारे

ही ऊपर यह भार दिया है। प्रवीय राजभाट तुमको सभास्य प्रत्येक

राजाका परिचय हेंगे । सुनकर और पूर्वापर विचार कर तुम ग्रपने थोग्य पति को वरख करो।"

राजपुरोहित यह कहकर चुप हो रहे। साथ ही जनकोला-हल ध्रीर वाजे वन्द हुए। दमयन्ती धात्री के साथ पहले प्राग-ज्योतिषपुर के राजा के पास गई। राजमाट उनके पास आ खड़ा हुआ । वह बूढ़ा था, उसके सिर के बाल सफेद थे। चमड़ा सिकुड़ा हुआ था। वह पीत वस्न पहने था। गुलाबी रङ्ग की चादर कन्धे पर डाले था। उसके ललाट में त्रिपुण्डु चन्दन शोभित था। सिर पर ख़ूब वड़ी पगड़ी शोभा देरही थी। हाथ में एक सोने की छड़ी थी। प्रत्येक राजा की वंशावली श्रीर सुयश उसे मालूम था। उसने प्रागुज्योतिषपति को लच्य करके दमयन्ती से कहा, "राजकुमारी! त्रापके सामने जो ये इन्द्रतल्य प्रकृष विराजमान हैं, इनका नाम सामदत्त है। ये प्रागज्योतिषपुर के राजा हैं। इनके बाहुबल से पराजित होकर दुईम्य किरातों ने इनकी श्रधीनता स्वीकार कर ली। इनके दन्तार हाथी ऐरावत के समान बलवान हैं। ग्रगर ग्राप इन्हें खीकार करेंगी ते। नगर के प्रवेशकाल में किरात की खियाँ नाच गाकर भ्रापकी अभ्यर्थना करेंगी ग्रीर ग्रापको प्रसन्न करेंगी। जब ग्राप इनके पर्वत की चोटी पर वने हुए प्रासाद के ऊपर खड़ी होंगी तब ग्राप ऐरावत पर श्रारूढ़ इन्द्रांखी की तरह शोभा पावेंगी।"

यह सुन कर दमयन्ती ने एक वार उत्सुकतयन से प्राग्व्यो-तिषपति को देखा श्रीर उनको नमस्कार करके श्रागे बढ़ने के लिए दासी को इशारा किया। दासी वहाँ से मिथलापीश के पास ले गई। राजमाट कहने लगा — "राजकुमारी! भूपमण्डली में ये जो श्राकृति श्रीर स्थान में ब्राह्मय के सहश जान पहते हैं, ये मिथिला के महाराज तृषण्डल हैं, जो आपके करप्रहण की श्रमिलापा से यहां आपे हैं। इनका दरवार ओप्रिय ब्राह्मणों से बरावर भरा ही रहता है, और इनके अग्निहोत्र का घर कभी होम के धुवें से लाली नहीं रहता। बुड़ापा आ जाने पर भी ये कठिन से कठिन ब्रत करने में कभी आलस्य नहीं करते। सक्लीक होकर धर्मांचरण करने का विशेष फल है, यह साच कर सन्तान रहते भी ये फिर विवाह करना चाहते हैं। प्रति दिन सामगान सुन कर यदि आपको सबेरे शप्या लाग करने की इन्छा हो तो आप इनको वरें। अगस्य सुनि के बाम भाग में लोपासुद्रा की भीति आप भी बहासल में इनके पास बैठ कर शोमा पार्वेगी।"

दमयन्ती ने मिथिलाधीश के दर्शन कर हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम करके दासी से अन्यत्र चलने का संकेत किया।

दासी दमयन्ती को लेकर मगघ के राजा ऋतिमान के पास गई। अन्यान्य राजा उत्सुक चित्त से उसे देखने लगे। भाट ने दमयन्ती से कहा—"पर्वती में जैसा विन्च्य, क्वों में जैसा साख़, वैसे ही राजाओं में ये मगघक महीप ऋतिमान हैं। इनका दुवेंचे बल-पराक्रम, इनके खरूप से ही प्रकट हो रहा है। वृषम के कन्ये की माँति इनका मोटा कन्या, किवाड़ के तख्तेसी चौड़ी छाती, और हाथी के सूँड सी इनकी मोटी वाई कैसी शोमा दे रही हैं। इनकी वाहुयुद्ध में हार कर किवने ही वड़े बड़े नामी पहलवान

इनके चेले बने हैं। इनकी राजधानी पहाड़ों के बीच में सुशोभित है। पहाड़ ही इनके किले का काम दे रहे हैं। अनेक बार शतुओं से आकान्त होने पर भी कभी इनकी राजधानी दूसरे के हाथ में न गई। यदि आपको वीरपत्नी कहलाने की एकान्तवासना हो तो आप इनको पतिरूप में प्रहण करें।"

दमयन्ती ने सिर नवा कर ऋतिमान को नमस्कार किया। दासी राजकुमारी के मन का आशय समम्म कर उसे कोशलाधीश मीनकेतु के पास ले गई। दमयन्ती ने सुन्दर वेशधारी मीनकेतु को एक वार पलक उठा कर देखा।

भाट ने कहा—''राजकुमारी ! जिस कोशल देश की दिचण सीमा में पवित्रसत्तिला गङ्गा की धार है स्रीर जिनकी राजधानी के पास सरयू नदी प्रवाहित है, उसी कोशल देश के राजा ये मीनकेतु हैं। इनकी राजसभा नर्तकीगर्यों के नाच गान से सदा उद्घसित होती रहती है। जाड़े के समय में रहने के लिए इन्होंने सरयू के किनारे श्रीर श्रीष्मवास के लिए गङ्गा-तट पर जो विशाल भवन वनवाया है. संसार में उनके जोड़ का मकान देखने में नहीं स्नाता। पत्नियों के .साथ ये कभी सरयू तीर के उपवन में विहार करते हैं। कभी गङ्गा ्में जलकीड़ा करते हैं। दासीगरा तुरन्त के खिले हुए फूलों से इनकी शाज्या सँवारती हैं। इनके राजभवन से निकले हुए कस्तूरी के सुगन्ध से सारा नगर सर्वदा आमोदित होता रहता है। इनकी उपवाटिका जो सरयू किनारे सुशोभित है, वह अपनी शोभा से इन्द्र के नन्दन कानन को भी पराजित कर रही है। यदि आप इन्हें पतिभाव से

स्वीकार करें तो इन्द्रायी भी जिस उद्यान में विहार करने की लालसा रखती हैं आप उसकी अधीखरी होंगी।"

इसी समय दूर से नल को देख कर दमयन्ती कोशलेश को नमस्कार करके उनके पास जाने को उदात हुई।

यह देख कर दासी ने कहा—"राजकुमारी ! आपकी धाँई ओर एक खीर राजकुमार हैं, उनको अविक्रम कर धागे जाना उचित नहीं, इससे वे अपना अपमान समम्भेरो ।" यह सुन कर दमयन्तो लजा गई और दासी के साथ उस राजकुमार के पास जा खड़ी हुई।

भाट ने कहा-"राजनन्दिनी ! श्रापके सामने जो ये सुराष्ट्र देश के राजकुमार रुक्मरथ विद्यमान हैं, इनका रथ रुक्म श्रर्थात् सोने का वना है, इसी से इन्होंने यह दुर्लंभ उपाधि पाई है। इनका राज्य समुद्र तक फैला हुआ है। इसलिए क्या जल, क्या चल, जहाँ जो दुर्तभ रत्न उत्पन्न होता है, वह सब इन्हीं के पास त्राता है। आप इनकी ओर एक बार श्रांख उठा कर देखें तो मालूम होगा, इनकी पगड़ी का हीरा शुक्र-प्रह की भाँति कैसा चमचमा रहा है। इनके कण्ठ में हरित मिया की माला। वसन्तकाल की लता की तरह अपूर्व शोभा दे रही है। इनकी वाँह में पद्मराग जटित केयूर, हाय हाथ में नीलमणि जटित सीने का कड़ा श्रीर कानें। में मोती से मण्डित कुण्डल की शोभा देखते ही वन ग्राती है। यदि ग्राप इनको वरण करें तो ये अपने भाण्डार का सर्वोत्तम रह्मसमृह श्राप की देंगे। जब श्राप उन रहों की धारण करेंगी, तब मानव जाति की रानियों की बात दूर रही कुबेर की स्त्री भी प्रापकी समता नहीं करेंगी।"

भाट की बात सुन कर दमयन्तों के होठों पर कुछ हैंसी भ्रा गई। उसने दासी से कहा—"चलों, सभामण्डप के उत्तर ब्रोर चलें।" दासी "जा आपकी इच्छा" कह कर उसके पीछे पीछे चली।

इस वार दमयन्ती नल के सामने आई। वहाँ आते ही उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो आया। उसकी इच्छा हुई कि एक वार नल को अच्छी तरह देख लें, किन्तु लजा ने 'ऐसा करने न दिया। तो भी वह कनिखयों से देख कर समक्ष गई कि कुछ देर पहले जो देवदूत वन कर उसके श्रन्तःपुर में गये थे. थे वही हैं। किन्तु अभी स्वयंवर के योग्य पोशाक में वे और भी सुन्दर दिखाई देते थे। चतुर भाट दमयन्ती के सुँह का भाव देख कर बोला—"ये जो भ्रयन्त सुन्दर चक्रवर्ती के लचल से युक्त कमनीय पुरुष आपके सामने वैठे हैं, यही विख्यातकीर्ति, निपध देश के महाराज नल हैं। ब्रह्मा ने सब गुणें की एकत्र दिखलाने ही के लिए इनको सिरजा है। संसार में विशेष से साधारण तक ऐसा कोई काम नहीं जिसमें ये कुशल न हों। वेद-वेदाङ शास्त्रों पर इनका पूर्ण अधिकार है। रथ चलाने और रसेाई बनाने में भी ये वड़े दच्च हैं। इनका रूप, युवापन, कामिनीजनेां के मनाहर होने पर भी ये जितेन्द्रिय हैं, दण्ड देने का सामर्थ्य रखते हुए भी ये जमाशील हैं। ये अपने वाहुबल और अपने पवित्र द्याचरण इन दोनों गुणों से शत्रुद्यों को जीते हुए हैं। **द्र्यपने** प्राण का कुछ मोह न करके ये विपद्यस्त शराणांगती की रचा करते हैं। सत्य के अनुरोध से ये अपना अभीतिकर कार्य करने में भी विमुख

नहीं होते। कर्तव्य के पालन में ये अपने हानिलाम का निचार न करके जो जिनत सममते वह अवश्य करते हैं। रूप, गुरा और शील में ये सर्वदा आपके उपयुक्त हैं। यदि आपकी इच्छा हो तो इन्हें पति कार्व।" इसयन्ती ने भाट की बात सुन कर प्रसन्न दृष्टि से नल को

-देखा । उनके गले में वरमाला डालने के लिए उसका हाथ किचित्

ऊपर को उठा । किन्तु वह एकाएक ठिठक गई । उसका मुँह सूख गया। उसकी छाती धड़कने लगी। दोनों पैर कॉपने लगे। सिर में पसीने की बूँदें दिखाई देने लगीं। वह कुछ देर निश्चल भाव से खड़ी रही। दासी ने इसका कारण न जान कर पूछा—"राज-कुमारी ! ग्रापका मुँह ऐसा उदास क्यों देखती हूँ ?" दमयन्ती ने . कुछ उत्तर न देकर केवल मल की निकटवर्ती क़ुरसियों की ग्रीर **जॅंगली उठाई। दासी को** कुछ दिखाई न दिया। किन्तु दमयन्ती देख रही थी, जिस मध्व पर नल बैठे थे, उसके पास ही उनके समान श्रीर भी चार व्यक्ति वैठे थे। रूप, वयस श्रीर पोशाक श्रादि में उन पाँचों में कुछ फ़र्क़ नहीं था। उनमें कीन सचा नल है, किसके गले में वह वरमाला पहनावे, इस चिन्ता से वह ज्याकुल हो रही थी। एकाएक उसे यह बात याद हो ब्राई कि दत ने कहा था, देवगण मुभसे ज्याह करने की इच्छा से खयंवर में श्राये हैं, तो क्या मेरी परीचा करने के लिए यह उन्हीं की माया तो नहीं है ? दमयन्ती दुखी होकर मन ही मन कहने लगी, ''देवगण ! स्राप धर्म के रचक हैं। खियों के लिए सतीत्व-धर्म से बढ़ कर कोई धर्म नहीं। जिससे मेरा सती धर्म वना रहे, वह आप करें।" पलक

मारने के साथ दमयन्ती ने देखा, जन पाँचों में चार की सूरत शकल पाँचवें से कुछ विलच्या है। उन चारों की पलकें नहीं लगतीं, उनके सिर में पसीना नहीं है, और कुरसी पर बैठे रहने पर भी धरती से उन चारों के पैर कुछ ऊपर उठे हैं। देखते ही वह समफ गई कि ये चारों देवता हैं। पाँचवाँ एक सज्ञा नल है।

इस प्रकार सचे नल का पता लगा कर दमयन्ती ने प्रफुल मन से उनके गले में वरमाला डाल दी और दासी के हाथ से चन्दन लेकर उनके मस्तक में लगा दिया तथा ऋर्घ से उनके पैर धोकर ंडन्हें प्रणाम किया। साथ ही सखीगण मङ्गल गीत गाने लगीं, पुरोहित की शंखध्विन से सभामण्डप गूँज छठा। भाँति भाँति के मङ्गलवाद्य वजने लगे। बन्दीगरा खूब उचस्वर से ''जय गर्गाश मङ्गलकरए" ग्रादि भ्राशीर्वाद सूचक देवस्तुति पढ़ने लगे। थोड़ी ही देर में यह शुभ समाचार सारे नगर में फैल गया। सन कर सभी लोग प्रसन्न हुए श्रीर कहने लगे. "राजकुमारी ने योग्यवर पसन्द किया।" शुभ दिन शुभ घड़ी में नल के साथ दमयन्ती का च्याह हो गया । निमन्त्रित राजगण विदर्भराज से उचित सत्कार पाकर किसी तरह मनोदुःख को दवा कर अपने अपने घर गये। इन्द्रादि देवगए भी दम्पती (नल-दमयन्ती) की श्राशीर्वाद देकर स्वर्गको गये।

व्याह हो जाने पर नल ने दमयन्ती को साथ ले निषधदेश को प्रस्थान किया। थोड़े ही दिन में दमयन्ती अपने अच्छे शील स्वभाव से प्रजावर्ग और आश्रित जनों की मात्रवत् पूजनीया हुई। धार्मिक स्त्रो-पुरुषों का समय जिस आनन्द के साथ व्यतीत होना चाहिए, उनका समय भी उसी तरह ज्यतीत होने लगा। यह और व्रताचरण में दमयन्ती अपने पति की सिङ्गिनी हुई। विवाह का जे। सुख्य उदेश है वह भी सफल हुआ। यथासमय उनके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। पुत्र का नाम इन्द्रसेन रक्ष्या गया और वेटी का इन्द्रसेना। दोनों रूप, गुण और शील-खमाव में माठा-पिठा के समान हुए।

इस संसार में निरन्तर सुख कभी किसी की न हुआ। सुख के समय किसी के धर्म की परीचा भी नहीं हो सकती। सोने की जाँच जैसे आग में होती है, वैसे ही धर्म की परीचा विपत्तिकाल में होती है। कहा है:—

''श्रापत्काल परखिए चारी । धीरज धर्म मित्र ग्रह नारी ।"

दमयन्ती के जीवनकाल में भी एक विषम परीचा प्रास्त्य हुई। उस परीचा में वह भली भाँति उत्तीर्थ हो गई। इसी से पितव्रताओं में उसने ब्रेष्ठ श्रासन पाया। विना परीचा के निरस्तर सुख भाग करने पर भी कीन उसका साम जानता?

नल के एक सगा भाई था, जिसका नाम पुष्कर था। नल जैसे धार्मिक, साधुस्तभाव और जितेन्द्रिय थे, पुष्कर ठीक उसके दिलाफ़ था। वह चरदम्त छली, हुए स्त्रभाव और प्रथमी था। नल के राज्य और ऐश्वर्य पर उस हुए के दाँत गड़े थे। पितनवा सम्यन्ती के उत्पर भी उसकी चुरी निगाह थी। किन्तु वलपूर्वक नल को सम्पत्ति था समयन्ती का अपहरण करना चर्समभव देख कर उस हुए। सो एक स्वाप्त से कर उनका से सम्पत्ति था। इस लिए उसने नल को जुए में हरा कर उनका

में यह एक रिवाज था कि युद्ध में या सूतकीड़ा में बुलाये जाने पर वे इनकार नहीं करते थे। यदि किसी ने इनकार किया ते। . · वह कायर समभा जाता या ग्रीर सर्वत्र उसकी निन्दा होती थी।

हज़ारों गुख रहते भी नल की जुआ खेलने का बड़ा शौक था। राजान्त्रों के लिए नीति-शास्त्र में जो ब्रठारह प्रकार के व्यसन लिखे

हैं. उनमें जुझा खेलना मुख्य है। पुष्कर से बुलाये जाने पर राजा नल इस व्यसन से श्रपने को न रोक सके। दोनों में दिन दिन जुवैवाज़ी चलने लगी। नल वारंबार हारने लगे। वे जितना ही हराते थे उतनी ही उनकी चसक जुने की ग्रीर बढ़वी जाती थी। भाण्डार के मशिमोतियों

से प्रारम्य कर घोड़े, हाथी, वागु, वगीचे ग्रीर इसारते तक वाजी रख कर नल ज़ुमा खेलने और हारने लगे। क्या दिन क्या रात नल सर्वदा जुम्रा खेलने ही के पीछे हैरान रहते थे। दसरा कोई काम उन्हें श्रच्छा नहीं लगता था। उन्होंने राजकार्य करना एकदम छोड़ दिया। राजसम्बन्धी कार्य में उनकी अनुसति लेने के लिए बूढ़े मन्त्री ज्यम होने लगे, पर उन्हें नल का दर्शन

दुर्लभ हो गया। दमयन्ती शयनगृह में श्रकेली बैठ कर रात विताती थी। नल दिन रात में एक बार भी महल के भीतर न ब्राते थे। नल को इस प्रकार व्यसनासक्त देख कर प्रजागस में द्वाहाकार मच गया। वे सब कहने लगे, महाराज की किल

ने आ घेरा है, नहीं तो उनकी बुद्धि इस वरह श्रष्ट क्यों होती ? चाखिर एक दिन प्रजा ने मन्त्री की साथ लेकर दमयन्त्री के पास

जाकर निवेदन किया-"मां ! राज्य हाथ से चला जा रहा है, आप महाराज से समभा कर न कहेंगी ती कुछ न वचेगा।" दम-यन्ती नल का दर्शन कहाँ पाती जो उनसे कुछ कहती। एक दिन संयोग से उनसे मेट होने पर उसने फ्रांसू भरी फ्रांखेां से सब वातें कह सुनाई श्रीर श्रन्त में उनके पैरी पर गिर कर रोने लगी। किन्तु इससे कुछ फल न हुआ । नल कुछ देर उदासी के साथ दमयन्ती के मुँह की ग्रीर देखते रहे, इसके वाद विना कुछ कहे वृत्तशाला में जाफर पुष्कर के साथ फिर जुना खेलने लगे। दमयन्ती के हृदय में वड़ी चीट लगी । वह हाथ जीड़ कर पति की सुमित दैने के लिए देवताओं से प्रार्थना करने लगी । वह समक गई कि महाराज की जुने में जैसी श्रासिक उत्पन्न हुई है उससे कुछ न वचेगा, धीरे धीरे सब पुष्कर के हाब में जायगा।" पति के साथ दु:ख भोगने के लिए वह तैयार हो रही । किन्तु छीटे से वालक श्रीर वालिका दुःख न सह सकेगी, यह सोच कर उसने उन्हें अपने पिता के घर भेज दिया।

इधर नल ने जुनेवाज़ी में अपना सर्वेख खेा दिया । राज्य, धन जों कुछ बा सब हार जाने पर ने अपने भूपया, वख, धतुप-वाख तक जुने में हार गये। पुष्कर की इच्छा थी कि नल अपने को और दमयन्त्री की भी बाज़ी पर रक्खेगा, किन्तु नल ने ऐसा न किया। पुष्कर ने नल की जुने में जीत कर कहा—"मूर्जे! तुम अब यहां क्या करते हो? तुम्हारे पास जो कुछ था, तुम सब हार गये। अब यह राज्य भेरा हुआ, तुम यहाँ से कूच करे।"

ंनल ने कुछ श्रापत्ति न की, तुरन्त राजमवन साग दिया, पित-

प्राणा दमयन्ती पहले ही से तैयार थी, पति को जाते देख वह भी **उनके पीछे पीछे पत्ती । राजा श्रीर रानी को राजधानी छोड उस** श्रवस्था में जाते देख नगरनिवासी लोग श्रातनाद करने लगे। घर . े घर में उदासी छा गई। किन्तु दुष्ट पुष्कर ने घेषणा कर दी थी कि जो कोई नल श्रीर दमयन्ती को किसी तरह का सहारा देगा उसे प्राग्रदण्ड दिया जायगा । इसलिए प्रजाहितैषी नल ने किसी की सहायता स्वीकार न की । उन्होंने नगर स्वाग कर घोर जङ्गल में प्रवेश किया। उनके मुकुटरहित मस्तक पर प्रचण्ड सूर्य की किर्गों पढ़ रही थीं। कमल से कोमल पैरों में बहुत बचा कर चलने पर भी क्रश काँटे गड़ जाते थे। तो भी दोनों धीरे धीरे आगे की ओर बढ़ने लगे। जुवे का बुरा परिखाम सोच कर नल का हृदय पश्चा-ं त्ताप से दग्ध होने लगा । वे सीचते थे—''मैं ही वेचारी दमयन्ती के इस कष्ट का कारण हूँ।" किन्तु दमयन्ती के मुँह पर विषाद का कुछ चिह्न न या। कहीं उसे उदास देख कर नल ग्रीर भी लक्कित श्रीर ब्रनुतप्त,न हों, इस भय से वह ऋपने क्वेश को यथासाध्य छिपाने की चेष्टा करती थी । वह कभी जङ्गली पेड़ पौधे श्रीर लताश्रीं का नाम पूछ कर कभी निपध देश यहाँ से कितनी ट्र है, **ऋादि अनेक प्रश्न करके नल के मन को भुलाने** की चेष्टा करती थी। किन्दुनल को श्रपनी मूर्खेता की बात कब भूलने वाली थी। वे दमयन्ती से वार वार कहने लगे—''प्यारी ! मैं ही तुम्हारे सव करों का मूल हूँ । यदि तुम मेरे ऐसे दुवींध की वरण न करतीं. तो स्राज तुम्हें यह कष्ट भोगना नहीं पड़ता !" दमयन्ती ने कहा—"नाथ ! क्या पत्नी पति के केवल सुख कीः दी साधिन है ? हुख की नहीं ? सुख के समय श्रापने सुमको ज्ञत में और यहा में सद्दामीयी का श्रासन दे कर श्रवण पुण्य का भाग दिया तो श्राज श्ररण्यवास के समय श्राप मेरे लिए इतने श्रथीर क्यों हो रहे हैं ? श्रापके साथ यह बनवास मेरे लिए खर्ग वास के तुस्य है। श्रापको कुछ हो श न हो, यही मेरे मन में भारी चिन्ता लगी रहती है। में श्रपने लिए ज़रा भी चिन्ता नहीं करती। श्राप प्रसन्न रहें तो सुके क्या हु:ख है ? श्राप जहां सुखपूर्वक रहेंगे वहां में भी रह कर सुख से समय विसाकाँग।"

दमयन्ती धीर नल क्षेत्रल एक पहरने का क्षपड़ा लेकर जङ्गल में आये थे। जब विपत्ति का दिन आता है तब बुद्धि भी श्रष्ट हो . जाती है—

> "प्रायः समापन्नविपत्तिकाले थियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।"

एक दिन नल सोने के रंग की विचित्र चिड़िया पकड़ने के लिए जाकर अपनी भोती गर्वा आये। उन्होंने भोती फेंककर चिड़ियों की फेंसाना चाहा। चिड़िया थाती लेकर उड़ गई। तब दमयन्ती ने अपनी साड़ी का आधा भाग करके नल की पहरने के लिए दिया। देंगों बड़े कष्ट से आगे बढ़ें। तन के तीते कड़वें फल मूल खाने, पेड़ के नीचे या गिरिगुफा में सोने और मार्ग चलने से देंगों के शरीर सूख गर्व। इस पर विपेले कीड़े और मिन्स्लयों के काटने से उन्हें बड़ा कष्ट होता था। मार्र चिन्ता के रात को उन्हें नींद न आती थी। दमयन्ती की आँख लगने पर भी नल जागते रहते थे और सोचते थे, "हाथ! कितने दिन और इस

तरह कटेंगे ?" कब इस विपत्ति से छुटकारा पावेंगे ? हा ! क्या थे श्रीर क्या हो गये ? कभी वे सोचते थे, ''पुष्कर ने जुवे में मुभको हरा कर सर्वेख हर लिया। यदि में भी उसे जुवे में हरा सक्तूँ, तभी मेरे मन का चोभ जा सकता है, श्रन्यथा नहीं । परन्तु वह जुवा खेलने में मुभ्त से निपुण है, उसकी परास्त करने योग्य यह विद्या मैं कहां पाऊँगा। सुना है, अयोध्या के महाराजा ऋतुपर्श इस समय जुवा खेलने में संसार भर में श्रद्वितीय हैं। किन्तु वे क्या सुक्ते **श्रपनी विद्या सिखा सकेंगे ? जी नहीं मानता** । मुक्ते चत्रिय जान कर उन्हें यह ग्राशङ्का होगी, "यदि किसी दिन मैं उनसे जुवा खेलने का अनुरोध करूँगा, तो वे मुक्तको न हरा सकेंगे।" आख़िर उन्होंने निश्चय किया, ''छद्मवेश से राजा ऋतुपर्ण के पास जाऊँगा। ं मैं उनकी सेवा करके या अपना कोई विशेष गुग दिखा कर जैसे होगा उन्हें प्रसन्न करके उनसे चूतविद्या सीख्ँगा । इससे पुष्कर को जुने में हरा कर फिर राज्यलाम करना मेरे लिए कठिन न होगा। यह विचार नल को वड़ा ही उपयोगी जान पड़ा। किन्तु तुरन्त ही उन्होंने फिर यह वात सोची, ''इस अवस्था में, इस आधे वस्त्र की पहन कर, दमयन्ती को साथ ले कैसे ऋतुपर्ण के पास जाऊँ ?" उनका हृदय निराशा से अधीर हो उठा । फिर उन्होंने सोचा, ''इसका भी एक उपाय है। यदि दमयन्ती कुछ समय के लिए वाप के घर जाकर रहे, तो में अयोध्या जाकर धृतविद्या सीख सकता हूँ। किन्तु दमयन्ती क्या मुभ्ने छोड़ कर ध्रकेली वाप के घर जाना पसन्द करेगी ? कभी नहीं। तो फिर उपाय क्या ?" नल में ब्रब सोचने की शक्ति न रही। वे चिन्ता से परास्त होकर सो गये।

इस तरह दिन पर दिन बीवने लगा। एक दिन नल ने दमयन्तो से कहा—"प्रिये! तुम कुछ दिन के लिए विदर्भ जाकर रहो। मैं कुछ यल करके देखूँगा, कदाचित् इस विपत्ति से छुट-कारा पा सकूँ।"

दमयन्ती—"नाथ ! प्राय रहते में आपको छोड़ कर नहीं जा सकती । मैं पिता के घर जाकर मुख से रहूँगी और आप वन वन मारे फिरेंगे, यह कमी मुफ्ते सख हो सकता है ?"

"जिय विनु देह नदी विनु वारी। तैसिहि नाथ पुरुष विनु नारी॥"

चिलए, आप भी विदर्भ चिलए, भेरे पिता आपको इष्टदेवं की माँति आदरसत्कार से स्क्सेंगे।

नल—"में जानता हूँ कि तुस्हारे माता-पिता मेरा अनादर न रेंद्र करेंगे। किन्तु में कीन गुँह लेकर उनके पास जाऊँगा १ तुन्हारे स्वयंवर में में चतुरिक्षणो सेना सजा कर विदर्भ गया था, अब इस भेष से कैसे वहां जाऊँगा। दरिद्रावस्था में जुदुम्ब के घर जाने से मर जाना अच्छा है।"

दमयन्ती चुप हो रही। नल ने समभा, "दमयन्ती अपने मन से उन्हें न छोड़ेगी। उनके मन में यह मी पूरा विश्वास हो गया कि कुछ दिन दमयन्तो से अलग होकर न रहने से उद्धार होगा कठिन है। इसलिए वियोग-ज्यमा कुछ दिन के लिए हम दोनों को सहनी होगी, परन्तु पविप्रासा दमयन्ती को वे अकेली उस जङ्गल में कैसे छोड़ कर कहीं जायँगे ? कैन हिंस आदि जङ्गली दुए पर्धुओं से उसकी रचा करेगा ?" फिर उनके सन में यह बात

ष्ट्राई िक धर्म ही सती को रत्ना करता है। कितनी ही नई उम्र की ब्रह्मचारियी अकेली तीर्थाटन करती हैं, निर्जन वन में कुटी बना कर तपस्या करती हैं, कीन उनकी रत्ना करता हैं ? मन में कोई टढ़ संकल्य उत्पन्न होने से उसके परिपेषक युक्ति का अभाव नहीं होता। आख़िर नल ने निश्चय किया कि जब दूसरा उपाय नहीं है तब दमयन्ती की गाढ़ निद्रा में सोती छोड़ कर किसी ओर चल दूँगा। दमयन्ती जैसी दुद्धिमती और सुशीला है, उससे वह किसी न किसी तरह निर्विष्ठपूर्वक पिता के घर पहुँच जायगी। जब सुदिन आवेगा तब उसके साथ फिर मेट हो रहेगी। यदि इस विपत्ति का अन्त न होगा तो मेरे भाग्य में जो दुःख बदा होगा वह सुक्ते अवश्य भोगना पड़ेगा। दमयन्ती पिता के घर रह कर वेटे बेटी के साथ किसी तरह समय वितावेगीही।"

यह सीच कर नल ने दमयन्त्री से कहा—"प्रियं ! इस जङ्गल के उत्तर तरफ से होकर जो राखा पूरव छोर गया है, वह विदर्भ जाने का मार्ग है, उस मार्ग से लोग चाहें तो खांख मूँ द कर विदर्भ जा सकते हैं। विनयां, महाजन और तीर्थयात्री लोग बरावर इसी रास्ते से वहाँ जाते छाते हैं। यदि किसी दिन तुम्हारी इच्छा हो तो तुम उन यात्रियों के साथ इस रास्ते से छनायास ही पिता के घर जा सकती हो।"

नल के इस प्रकार कहने का मतलब क्या है, यह दमयन्ती की समस्त में आ गया। उसने कहा—"नाथ! आपकी बात से मेरा हृदय काँपता है। क्या आप सुसको छोड़ना चाहते हैं? दासी ने ग्रापका क्या भ्रपराध किया है ? किस दोप से श्राप इस दासी की छोडेंगे।"

नल कुछ न बोले। पर दमयन्ती मारे चिन्ता के न्याकल हो वर्ता। यद्यपि वह स्वामी के साथ एक ही कपडा पहरे थीं। तथापि

जसका मन नहीं मानता था। रात में वह नल की दोनों वाहों से श्रच्छी तरह जकड कर सेति थी। कुछ दिन यों ही वीते।

एक दिन दमयन्ती अधिक परिश्रान्त होने के कारण नल से पहले ही सो गई। नल ने उसे गाढ़ निद्रा में निमन्न देख धीरे धीरे उठ वैठे श्रीर उसके श्राधे कपड़े फाड कर जाने की उद्यत हुए ≀

किन्तु दमयन्ती सी सती छी की कैं।न ऐसा पति होगा जे। विना

ग्रांसू बहाये छोड़ सकेगा ? नल पेड के नीचे सोई हुई दमयन्ती के पास खड़े होकर अनिमेप नयन से उसे देखने लगे। पत्तों के वीच से चन्द्रमा की चटकीली चाँडनी दमयन्ती के मुँह पर

पतित हो रही थी। वनवास के दु:ख से उसकी कान्ति मलिन हो गई शी तो भी नल की उसके मुँह की अपूर्व शोभा देख पड़ी। दस-

यन्ती फूँस पत्ते विछा कर सोई थी, परन्तु नल को यही जान पड़ता या जैसे वह चम्पा के फूलों पर सोई हो। वे जितना ही ध्यान-पूर्वक उसे देखते थे उतना ही उसका मनोहर रूप उन्हें अपनी ग्रीर खींचता था। वे उसकी शोभा वार वार देख कर भी तुप्त न होते थे। उन्होंने चाहा कि एक बार दमयन्ती की छाती से लगा

कर आख़िरी विदा लूँ किन्तु ऐसा करने से वह जाग वठेगी, पछता कर रह गये, पर उसे छाती से न लगा सके। पीछे चुप-चाप आँस् बहाते हुए वहाँ से विदा हुए। चलते समय जान पड़ा जैसे किसी ने उनके पैर में बेड़ी डाल दी हो। कुछ दूर जाकर वे फिर लौट अपने और दमयन्ती की उसी अवस्था में देख कर फिर खाना हुए। कुछ दूर जाकर उन्होंने सोचा, "इस बार

उससे ब्राबिरी मुलाकात कर आता हूँ।" फिर ब्राकर उसे देखा, वह उसी तरह गम्भीर निद्रा में अचेत हो पड़ी थी। पर उसकी आंखों से ब्रांसू वह रहे थे। चन्द्रमा की किरखों में वह आंसू की रेखा सीने की लकीर सी देख पड़ती थी। नल अब वहां खड़े नहीं रह सके। उन्होंने दमयन्ती के पास धुटने टेक कर धरती पर बैठ

हाथ जोड़ ईश्वर से प्रार्थना की "मगवन ! आप अन्तर्यामी हैं। आप सब जानते हैं। मैं अपने सुख के लिए दमयन्ती को नहीं छोड़ता हूँ। यदि आपकी छुपा से दमयन्ती को फिर निपध के सिंहासन पर बैठा सकूँगा तभी लैंग्हूँगा, नहीं तो यही मेरी दम-

यन्ती से आख़िरी विदाई है। तुम साधु के पालक ग्रीर सती क्षियों के सहायक हो। दमयन्ती की रचा का भार तुन्हारे ऊपर सींपे जाता हूँ।" नल यह कह कर खड़े हुए ग्रीर दमयन्ती की ग्रीर न

देख कर वहें बेग से निकल चलें।

कुछ रात रहते ही दमयन्ती की नींद दृटी। उसने देखा,
नल पास नहीं हैं। उसकी साड़ी फटी है। वह चैंक उठी।
उसने सोचा, इतने दिन जिसका डर था वह ग्राज सत्य हुआ।

पति के ऐसे निष्ठुर व्यवहार से पतित्रता दमयन्ती के मन में ज़रा भी कोध उत्पन्न न हुआ। वह केवल यही सीच कर बार बार

पछताने लगी कि दोष मेरा ही है। मैं वेख़वर होकर क्यों से गई ? अगर में सोती नहीं तो वे सुक्ते छोड़ कर कभी नहीं जा

सकते ?" कई बार उसके मन में होता, शायद नल की तुक के मिल कहों छिपे हैं; ग्रमी ग्राचेंगे ! किन्तु विलम्ब देख कर उसने विचार किया, नल श्रव भी बहुत दूर न गये होंगे। श्रभी उनकी खेाज करने से वे मिल सकते हैं। यह विचार कर दमयन्ती नल को खोजने चली। किन्तु उस विस्तृत वन में वे किथर गये, इसका कैसे पता लग सकता था। जब नल कहीं दिखाई नहीं दिये तब दमयन्ती व्याक्कल हो उन्मादिनी की भारत इधर उधर दौडने लगी। कभी पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर चारों श्रोर देखती श्रीर चिल्ला कर पुकारती, "नाथ ! श्राप मुक्ते छोड़ कर कहाँ चले गये ? एक बार दर्शन दीजिए।" कभी बालू पर पैर का चिह्न देख कर "नल इसी छोर गये हैं," सीच कर जहाँ तक पैर का चिह्न दिखाई देता था, जाकर फिर लैटि आती थी। कभी पतिविरह से इतकान हो पशु, पत्ती, पेड़, पैाधे श्रीर लता श्रादि जो सामने मिलता था, . उससे नल की बात पूछती थी। इसी तरह तीन दिन बीत गये। इस वीच में उसने न कुछ खाया, न कुछ पिया, न वह एक बार सोई, बराबर इस जङ्गल से उस जङ्गल में घूमती रही। कब भार हुया और कब सांभ हुई, इसकी भी वह कुछ ख़बर न रखती थी। बिना श्रन्न पानी के उसका शरीर निर्वल हो गया। उसमें अव चलने फिरने का उतना सामर्थ्य न रहा। इसी श्रवश्या में वह एक दिन एक विशाल अजगर के मुँह के सामने जा पड़ी । अजगर को देखते ही दमयन्ती के प्राया सूख गये। यद्यपि उसे दैं।डुने की शक्तिन थी ते। भी वह जी छोड़ कर भागी, सर्पभी प्रपना विशाल शरीर लेकर बड़े वेग से उसके पीछे दौड़ा। दमयन्ती कहाँ

तक दें।ड़ सकती थी, थोडी ही देर में यक कर धरती पर अचेत हो गिर पड़ी। अब दमयन्ती के बचने का कोई उपाय न रहा। साँप उसके पास पहुँच गया श्रीर उसे निगलना ही चाहता था. इतने में अकस्मात् उसके मस्तक में एक ऐसातीर श्रालगा कि वह वहीं हेर हो गया। दमयन्ती ने पीछे की ग्रीर घुम कर देखा तो साँप को मरा पाया। साथ ही इसके एक व्याधा भी पेड की म्राडं से हाथ में धनुपनाग लिये उस म्रीर भ्राता दिखाई दिया । दम-यन्ती यह समभ कर कि इसी ने मेरे प्राम बचाये कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए खडी हुई। ज्याधा ने दमयन्ती का परिचय पूछा। दमयन्ती कहने लगी---''मैं विपत्ति की मारी खामी के साथ इस जङ्गल में त्राई थी। मेरे स्वामी न मालूम मुक्ते छोड़ कर कहाँ चले गये। मैं चन्हें खोजते खोजते यहाँ ग्राई श्रीर इस श्रजगर के मुँह में पढ चुकी थी। श्रापने दया करके मेरे प्राण बचाये, भगवान श्राप का भलाकरे'।"

दमयन्ती एक आफ़त से वच कर दूसरी आफ़त में फँसी। दुरात्मा व्याधा दमयन्ती को देख कर उसके रूप से मोहित हो गया। कुछ देर दोनों में वातें हुईं। पीछे व्याधा ने कहा— "सुन्दरी! तुम मेरे घर चलो। मेरी घरनी होकर रहोगी तो तुम्हें कोई कष्ट न होगा।"

दमयन्ती ने उसका मवज़ब समक्त कर कहा—''सुनो निषाद ! तुम मेरे प्राणदाता हो। तुन्हें में पिवा के तुल्य समक्तती हूँ। भय-त्राता जन्मदाता से कम पूल्य नहीं होता । मैं तुन्हारी ऋवज़ा हूँ। ऐसी बात न बोलो, जिससे तुम पर मेरी अश्रद्धा उत्पन्न हो। तुम जाग्रो। ईश्वर तुम्हारा मङ्गल करेंगे।"

विधाता का चरित्र कीन जान सकता है ? पहले ही से जाकाश वादल से चिरा था। एकाएक विजली के प्रकाश से सारी वनसूमि चमक उठी और साथ ही उसके सपहुर शब्द से दसें दियायें प्रतिष्वनित हुई। ससीप ही एक ऊँचे पेड़ पर वजपात हुआ। दमयन्ती और न्याध दोनों ही भय से अचेत ही धरती पर गिर पड़े। जुळ देर बाद दमयन्ती ने आंस खोल कर देखा, ज्याधा निष्प्रात्य होकर परती पर पड़ा है। दमयन्ती ईश्वर को धन्यवाद दे वहाँ से चल दी।

नल ने दमयन्ती को विदर्भ जाने का जो रास्ता बतला दिया था, घूमते फिरते वह उसी रास्ते पर झाई। देखा, कितनें ही ज्यापारी अपना सीदा धोड़े, हाथी और बैलों पर लादे हुए उस

रास्ते से जा रहे हैं। दमयन्ती उन लोगों के पीछे पीछे जाने लगी। जब साँभा को उन लोगों ने एक सरोवर के किनारे ठहरने को डेरा डाला तब दमयन्ती भी वहीं रह गई। श्राधी रात को कितने ही जङ्गली हाथी उस सरोवर में पानी पीने की श्राये । उन्होंने गर्वेई हाथी को देख कर कृद्ध हो उन पर ब्राक्रंमण किया। व्यापारी नि:शङ्क-चित्त से सरोवर के तट पर सेाये थे। उस समय वड़ी विषम दुर्घटना घटी। आक्रमग्रकारी जङ्गली हाथी और मागने वाले श्रान्य द्वाथियों के द्वारा कितने ही लोग रैंदि गये। उनमें बहुतेरे मर गये। दमयन्ती जगी थी, इस कारण उपद्रव आरम्भ होते ही वहाँ से भाग कर उसने किसी तरह अपने प्राण बचाये परन्तु उसके सर्वाङ्ग कांटेां से चत-विचत हो गये । मूर्ख व्यापारियों ने सोचा। "त्राज तक कभी ऐसी अतिष्ट घटना न घटी थी, अवश्य ही इस अभागिन स्त्री के आने से यह उपद्रव हुआ है।" इन लोगों ने दमयन्ती की जान से मार डालने का विचार किया श्रीर कह दिया कि अब तुम हम लोगों के साथ जाश्रीगी ते तुम्हारी जान न बचेगी। जाने का इरादा छोड़ दो, या जान से हाथ थे। बैठे। यह सुन कर दमयन्ती ने उन लोगों का साथ छोड़ दिया। वह श्रकेली घूमती फिरती चेदि देश में जा पहुँची। उसका फटा पुराना कपड़ा, खुला हुआ रूखा केश, बदन में धूल श्रीर कीचड़ लगी देख कर शहर के लड़कों ने समभा, शायद यह स्त्री पगली है। फिर क्या था ? वे सब के सब फुंड वॉंघ कर तालियाँ बजाते ग्रीर उसके ऊपर धूल उड़ाते हुए उसके पीछे पीछे चले 🛭 दमयन्ती उन बालकों से ग्रपना पिण्ड छुड़ाने के लिए किसी श्रच्छे.

व्यक्ति का सहारा हूँ इने लगी। जब वह उस अवस्था में राजभवन के पास आई तब राती ने उसे देखा। दमयन्त्री को उस अवस्था में अनाधिनी की भांति विलसती देख कर उन्हें दया लगी। उन्होंने हासी से कह कर उसे भीवर बुखा लिया और करुणा भरे स्वर में कहा—"'तुम कौन हो ? इस दुरवस्था में भी तुम्हारा स्वरूप देखने से जान पड़ता है, तुम किसी अच्छे पर की बहू बेटी हो। तुम इस सरह अस्केली क्यों घूम रही हो ?"

रानी की पवित्र मूर्ति देखने और उनकी सीठी वाल सुनने से दमयन्त्री को बड़ा सन्वीए हुआ । वह उन्हें प्रधाम करके बोली— "मैं अपना हाल क्या कहूँ ? एक समय मैं अयन्त सुख में प्राप्त थी। मेरा घर धन जन से भरा था। किन्तु मेरे खासी जुने में सर्वेख हार कर सुक्ते साथ ले वन में आये थे। एक दिन वे सुक्तको छोड़ कर कहीं चले गये, वब से मैं दरावर उनकी खोज में धूमती किरती हूँ। कहीं उनका पता नहीं लगता।"

यह कहते कहते उसकी आँखों में श्रांसू मर आये। रानी भी श्रपने आंसू की न रोक सर्की। उन्होंने कहा—''बेटी! तुम रोक्री मत। धीरत धरेर। मेरे यहाँ रहे।। मैं तुम्हारे खासी की खोज में आदमी भेजूँगी। तुम जितने दिन मेरे यहाँ रहोगी, तुम्हें कोई क्लोश न होगा।"

रानी की बात सुन कर दमयन्त्री ने कहा—''आपका कोमख समाब देख कर आपके पास रहने को भेरा जी चाहता है। किन्तु भेरे कई एक नियम हैं। जिनकी रचा आपको करनी होगी। मैं किसी का जूँठा न खाऊँगी, न किसी का पैर पखाहूँगी। पर-पुरुष के साथ बात न कहँगी। यदि कोई पुरुष मेरी श्रीर कुटिए से देखें ती ग्राप उसे उचित दण्ड दीजिएगा।" रानी—"ऐसा ही होगा" कह कर उन्होंने श्रपनी बेटी को

चुला कर कहा—''सुनन्दा ! मैं ने इसे अपने यहां रक्ता है। यह तुम्हारी वरावर उम्र की है। आज से तुम इसे सखी की तरह श्रीर अपनी सगी वहन की तरह समक्त कर इसके साथ अच्छा वर्ताव करना।''

सुनन्दा माता की श्राह्म से दमयन्ती को श्रपने घर ले गई श्रीर यथोचित स्तेह श्रीर श्रच्छे व्यवहार से उसकी खातिर की। दम-यन्ती चेदि राज्य की अधीखरी के श्राश्रय में रह कर सुख से समय विवाने लगी।

इधर नल दमयन्ती को छोड़ कर बड़ी तेज़ी से निकल चले;

किन्तु दमयन्ती की चिन्ता छन्हें पग पग में पराभूत करते लगी। वे कुछ दूर आगे जाते चे श्रीर पीछे की ओर घूम कर देखते थे। उनके सन में होता या जैसे दमयन्ती रोती हुई उनके साथ आ रही है। कभी उन्हें यह जान पड़ता या कि दमयन्ती जैसे .खूव ज़ोर से पुकार कर उनसे कह रही है—"नाथ! सुभे छोड़ कर श्राप अकेले कहाँ जा

रहे हैं, खड़े हो, मैं भी आपके साथ जाऊँगी।" वे पीछे धूम कर देखते थे, कोई कहीं नहीं। कभी उनके मन में होता था, जैसे कोई खी बिलख बिलख कर रो रही हैं। जब अच्छी तरह ज्यान देकर सुनते थे, तब उन्हें मालूम होता था कि हवा बाँस के रन्ध्र में प्रवेश करके जो शब्द उत्पन्न कर रही हैं, उसी को उन्होंने दमयन्ती का रोना समम लिया था। इसी तरह ध्रागे बढ़ते बढ़ते एक दिन नल ने देखा—"सामने जङ्गल के मीतर आग धथक रही है।" नज़दीक से जा कर देखा, एक गढ़दे के चारों ओर आग लगी है। उसके भीतर एक वहुत बड़ा साँप आग की लपट से मुलस रहा है। मारे

भीतर एक बहुत बड़ा साँप श्राग की लपट से भुक्तस रहा है। मारे कप्ट के बह ख़ूब ज़ोर से सांस ले रहा है श्रीर जीभ लपलपा रहा है। यह देख कर नल ने समभा, कुछ ही देर में साँप श्राग में जल कर ख़ाक हो जायगा । महुष्य हो, या कोई श्रीर ही प्राणी हो,

नल किसी को सङ्घर में पढ़ा देख यथासाध्य उसकी रचा का उपाय

करते थे, इसिलए उन्होंने सांप को किसी तरह वचा खेने की वात सोची । किन्तु सभावदुष्ट सांप की रक्ता करने के लिए जाकर उन पर क्या वीतेगी यह भी उन्होंने जाना । श्राह्मिर अपने ऊपर विपद आने की आशङ्का रहते भी उन्होंने सर्प की रक्ता करना ही उचित समभा। वे भट आग के भीतर प्रवेश करके दोनों हाथों से

सांप को उठा कर बाहर ले धाये। परन्तु इससे हुब्रा क्या ? उनका श्रङ्ग श्राग में फ़ुलस गया और दो चार डग ध्राते न श्राते सांप ने भी उन्हें काट खाया। तो भी वे उसको न छोड कर निरापद स्थान

में ले घाये। इस समय नल ने बाकाशवाणी सुनी—''तुम इस उप-कार का फल अवस्य पाओगो।'' नल अव वहां रहने की कोई आवस्यकता न समम जङ्गल से बाहर हो अयोध्या की ओर रवाना हुए। नल ने देखा, सांप के काटने से छुळ विशेष अनिष्ट न हुआ। केवल उसके निप से उनके शरीर की स्वचा विवर्ण हो गई और मुख की कान्ति जी पहले थी न रही। उन्होंने सोचा, छुश्वेश के लिए विधाता ने जो ऐसा कुरूप कर दिया है सो अच्छा ही हुआ।''

जन्होंने अयोध्या पहुँच कर राजा ऋतुपर्ण से **भेंट** की श्रीर

सारिध के काम पर नियुक्त करने की प्रार्थना की । ऋतुपर्ध बहुत दिनों से एक योग्य सारिध की खोज में थे । भल को वातचीत से प्रसन्न होकर उसने उसे अपने अस्तवल का जमादार बनाया। नल की नई शिका से ऋतुपर्ध के वोड़े थोड़े ही दिनों में .खूव सुशि-चित हो गये। यह देख कर ऋतुपर्ध नल पर बहुत प्रसन्न हुआ।

विदर्भ के महाराज भीमदेव ने जब वेटी और जामाता के देशस्थाग की बात सुनी तब उन्होंने शोकार्त है।कर दें।नें की खोज में
जहाँ तहाँ श्रमेक दूत भेजे । उनमें सुदेव नामक एक दूत ने चेदिराजधानी में उपस्थित होकर एक दिन दैवयोग से दमयन्ती को
देखा। दमयन्ती ने भी उन्हें पहचान लिया और दासी के द्वारा
उन्हें भीतर युला भेजा। रानी को सब बात मालूम हुई। दमयन्ती
का परिचय पाकर उन्होंने जाना, 'वह उनकी सगी वहन की वेटी
है।'' तब ते। उन्होंने बड़े स्तेह से दमयन्ती को भूषण-वसन से
विभूषित कर अपने आदमी के साथ उसे सम्मानपूर्वक पिता के घर
भेज दिया। उसके माता-पिता खोई हुई कन्या को पाकर बार बार
अपने भाग्य को सराहने लगे।

दमयन्ती पिता के घर जाकर बड़े आराम से रहने लगी, पर उसका जी वरावर उदास रहता था। नल के लिए उसकी आंक्षों में दिन रात आंसू अरे ही रहते थे। जिन्ता से उसका शरीर दिनों दिन खिन्न और कान्तिहीन होने लगा। महारानी ने कन्या की अवस्था महाराज से कह कर नल के खोजने के लिए फिर देश देश दूत भिजवाये। दमयन्ती ने दूतों को बुला कर कहा—"आप लोग नगर, गाँन, तीर्थ और संपेवन जहां जायें, सब जगह लोगों से

कहना—"पहां का प्रतिपालन करना पति का परम धर्म है। धन्य वे पुरुष हैं जो पतिन्नता खीं के विरुद्ध स्नाचरण करते हैं। एक सब्जन प्रपत्नी अनुरारिग्धी पहीं को जङ्गल के भीतर सोई हुई छोड़ उसकी साड़ी से स्नाधा काड़ कर कहाँ भाग गये इसका पता नहीं।" यदि इस पर कोई कुछ वोले छोर उस क्यकि का पता बतावे तो स्नाम लोग मेरे पास उसकी ख़बर हैं और उनका पूरा परिचय भी पूछते चावें।" यह कह कर दमयन्ती ने नाह्यखें को प्रवास करके विदा किया।

बहुत दिनों के अनन्वर पर्वाद नाम के एक शाह्यय ने लीट कर दमयन्वी से कहा—''राजकुमारी! में तुम्हारे पति की खोज में बहुत जगह धूमा पर वे न मिलें। में जहां जहां गया, सर्वन्न तुम्हारे आदेशानुसार वात कहीं पर किसी ने कुछ उत्तर न दिया। आखिर मैंने अयोध्या के महाराज श्रृतुपर्ध की सभा में जाकर आपको कहीं वात सब की सुनाई। इस पर राजा या राजसम्बन्धी कोई कुछ न बोला। केवल राजा के एक सार्राध ने बह वात सुन कर सुके एकान्त में ले जाकर वरावर तुम्हारा और तुम्हारी सन्तानों का कुशल पृद्धा। उसकी वातचीत से जान पड़ा जैसे वह तुम्हारे दुःस से अरसन्त तुखी हो। क्या उसने निपध में तुम्हारे यहाँ सारिष्ठ का काम किया था ?''

दमयन्ती—''उसका नाम कहिए तो मालूम हो।''

पर्खाद--''नाम उसका बाहुक है।"

दमयन्ती—''इस नाम का कोई ब्राइमी मेरे यहां सारिय या, समरण में नहीं ब्राता। अच्छा, उसका शील स्वभाव ग्रीर सक्स कैसा है ?" पर्णाद—"वह देखने में अत्यन्त कुरूप है। उसका शरीर काला है, किन्तु उसके शील स्वभाव के सम्बन्ध में जो कुछ मालूम हुआ है, उससे वह अच्छे कुछ का जान पड़ता है। वह सत्यनिष्ठ, जितेन्द्रिय ख्रीर दयालु है। छोटे काम पर नियुक्त होने पर भी वह अपने गुख से मन्त्री की भाँवि अदुपर्ध के यहाँ आदर्धीय ख्रीर विश्वासपात्र समभा जाता है। राजा के और जितने सारिध ख्रीर धोहों के सर्इस बगैरह हैं, सभी उसमें निश्चल भक्ति रखते हैं। वह पूर्ण विद्वान है, होगों के मुँह से सुना कि रख चलाने में उसकी: बरावरों करने वाला संसार में विरला ही कोई होगा।"

दमयन्ती—''क्या उनकी दिनचर्या के विषय में भी कुछ सुना ?'' पर्णाद—''उसे तुम्हारी बात पूछते सुन कर मैंने उसके आचार व्यवहार को विषय में भी वहत वातें की खोज की। वह नित्य स्नान करके अग्निहोत्र करता है; बड़ी पवित्रता से रहता है। श्रपने नियत कार्य्य से छुट्टी पाने पर एकान्त में बैठ कर शास्त्र की चिन्ता ग्रीर परमेश्वर के ध्यान में समय विताता है। पर प्राश्चर्य की वात यह है कि वह विशेप धर्मात्मा और सब का प्रियपात्र होने पर भी सदा उदास श्रीर चिन्तित रहता है। सुना है कि रात का अधिक भाग वह रोकर ही विताता है। उसकी एक और विचित्र टेव यह है कि वह अपना एक पुराना, मैला कपड़ा जहाँ जाता है, साथ लिये जाता है। कभी कभी तो उस पुराने कपड़े की छाती पर रख कर ग्रांसू बहाता है। पर ऐसा वह क्यों करता है यह कोई नहीं जानता । उसके सम्बन्ध में मैं जो कुछ देख सुन श्राया हूँ वह श्राप से कह सुनाया। अब ग्रापका जो कर्तन्य हो कीजिए।

दमयन्ती ने योग्य पुरस्कार से पर्णाद को प्रसन्न करके विदा किया । पर्छाद की वात से उसे पूरा विश्वास हो गया कि वह वाहुक ही नल हैं। परन्तु दो वातों से उसके मन में कुछ सन्देह उत्पन्न हुआ। प्रथम यह कि पर्णाद ने कहा—''वह देखने में वड़ा क़ुरूप है। वे तो कुरूप नहीं हैं, तो क्या किसी रोग ने उनकी सुन्दरता हर ली ? दूसरे नल राख ग्रीर शास्त्र दोनों ही में श्रद्वितीय पण्डित हैं। यदि संकट में पड़ कर उन्हें दूसरे की नौकरी करनी पड़ी तो उन्होंने मन्त्री या सेनापति का कार्य न करके सार्राध का काम क्यों किया ? जो कुछ हो, जब नल के साथ वाहुक का इतना साटश्य है तव एक वार उसे ग्रवश्य देखना चाहिए।" यह सोच विचार कर दमयन्ती माता के पास गई श्रीर पर्णाद की कही हुई सब वाते' सुना कर मां से कहा—''मां ! में राजा ऋतुपर्ग ग्रीर वाहुक की यहाँ मॅगाने के लिए एक उपाय रच्ँगी। छाप अभी पिता से कुछ न कहें । सुदेव की एक वार मेरे पास बुला दीजिए । वह ग्रत्यन्त वुद्धि-मान ग्रीर कार्यसाधन में जुशल है। उसके द्वारा मेरे विचार के श्रतु-सार कार्य होगा"।

रानी की आज्ञा से सुदेव अन्त:पुर में आया। दमयन्ती ने उससे कहा— "आप एक वार अयोध्या के महाराज अतुपर्ध की पास जाइए, उनसे कहिएमा कि हेर दिन हुए नल दमयन्ती को छोड़ कर कहाँ गये इसका कुछ पता नहीं। इस लिए दमयन्ती ने दूसरा पित करने का विचार किया है। स्वयंवर का दिन कृरीव आ गया। यदि आपकी इच्छा हो तो आप आज ही विदर्भ की चल दीजिए। मैं किस अमिश्राय से आपके पास आया हूँ यह अगपको पीछे मालूम होगा, अभी यह बात आप किसी से न कहिए।"

"जो आज्ञा" यह कह कर सुदेव विदा हुआ। कुछ दिन में राजा ऋतुपर्यं के पास पहुँच कर उसने दमयन्ती का संवाद उनसे कहा। ऋतुपर्ध दमयन्ती के रूप-गुष की बात सुन कर पहले ही से उस पर ऐसे श्रासक्त थे कि उसका दूसरा स्वयंवर होना सम्भव है या नहीं, इंस पर कुछ विचार न किया। वे सुदेव को विदा करके विदर्भ जाने का तैयारी करने लगे। दमयन्ती ने अयोध्या से विदर्भ जाने का मार्ग दूर श्रीर दुर्गम जान कर कल्पित खयंवर का दिन इतना समीप नियत कर दिया था कि विशेष सुशिचित घोड़े श्रीर परम प्रवीग सारिथ के विना कोई रास्ता तय करके ठीक समय पर खयंबर में उपस्थित न हो सकता था। ऋतुपर्श ने बाहुक को बुला कर कहा- 'देखे। बाहुक ! विदर्भ के राजा भीमदेव की बेटी दमयन्ती का दूसरा खबंबर होने वाला है । मैं श्राज ही विदर्भ की यात्रा कहँगा। तुमने पहले कहा था कि थे।ड़ा हाँकने में तुम बड़े प्रवीख हो, रथ चलाने में शायद ही कोई तुम्हारा मुकाबला कर सके ।" श्राज तुम श्रपनी प्रवीयता दिखाओ । यदि तुम ठीक समय पर मुक्ते विदर्भ पहुँचा सकोगे ते। तुम जो माँगोगे वह मैं श्रवश्य दूँगा।"

दमयन्ती का दूसरा स्वयंवर होगा, यह संवाद नल के हृदय में बाख की तरह लगा। उसका सिर घूमने लगा। वह अपने मनोगत भाव की छिपा कर बोला—"महाराज की आज्ञा पालन के लिए मैं पूरी चेष्टा करूँगा। आप तैयार हों।"

पवित्रवा । १७८

क्या कभी दूसरे पित को वर सकती है ? उसका दूसरा खयंवर होना क्या कभी सम्भव है ? हो भी सकता है, मेर सहश पत्नीद्रोही नराधम को दण्ड देने के लिए विधाता ग्रसम्भव को मी सन्मव कर सकते हैं! दमयन्ती का खयंवर विना श्रपनी भ्रांखें। देखे मेरे पाप का प्रायश्चित्त न होगा। इसलिए विधाता मुफको इस रूप में वहां लिये जा रहे हैं।" फिर उसने सीचा,

"यह कभी नहीं हे। सकता । चन्द्रमा श्रपनी शीतलता छोड़ सकता है, पर दमयन्ती कभी श्रपना धर्म नहीं लाग सकती। मैं दमयन्ता के ऊपर ग्रविश्वास करके श्रपने ऊपर पाप का वीभ

यह कह कर नल घोड़ा गाड़ी जीत कर लाने गया। परन्तु ऋतुपर्ण की बात सुन कर उसका हृदय भीतर ही भीतर शोक से जल रहा था। उसने सोचा--"दमयन्ती सी पवित्रता स्त्री

न ॡँगा।" ऋतुपर्ध रथ पर श्रारूढ़ हो विदर्भ को रवाना हुए। नल ग्रसाथारण प्रवीएता दिखलाता हुआ दुर्गम पहाड़ी भूमि, कीचड़ से भरा हुआ मार्ग श्रीर हुर्भेद्य जङ्गल की श्रविक्रम कर नियत दिन को प्रात:काल ही वहाँ पहुँच गया । ऋतुपर्ध उसके घे।ड़ा हाँकने की

निपुणता, कार्यतत्परता और अससहिष्णुता देख कर बड़े विस्मित श्रीर ख़ुश हुए। विदर्भ राजधानी के पास आ जाने पर उन्होंने वाहुक से कहा--"मैं तुम्हारे ही गुरा से खर्यवर होने के पूर्व यहाँ पहुँच गया। इससे जान पड़ता है मेरी कामना सिद्ध होगो। यदि वह सर्वाङ्गसुन्दरी दमयन्ती ग्राज सुम्ने खयंवर में खीकार करेगी ते। हुमको दस गाँव, एक हजार अशरफी और एक बहुमूल्य पगड़ी

इनाम दूँगा।" ऋतुपर्ध न जानते थे कि ने बाहुक के पास इनाम का प्रलोभन क्या दे रहे थे माना निष उगल रहे थे। बाहुक ने कुछ उत्तर न दिया।

थोड़ी ही देर में ऋतुपर्ध का सुखख्य भङ्ग हुआ। उन्होंने राजधानी में प्रवेश करके देखा, खयंबर की कहीं कुछ चर्चा भी नहीं है। तव उन्होंने जाना, किसी ने ऋठी ख़बर देकर उन्हें ठग दिया। वे अपने आने के उद्देश्य को छिपा कर राजा भीमदेव से मिले। भीम ने उनके इस प्रकार अनवसर आने का कारण पूछा। वे मारे ख़जा के यथार्थ कारण न वता सके। "बहुत दिन से भेट नहीं हुई थी, इस लिए आपसे भेट करने आया हूँ।" यही उत्तर उन्होंने दिया।

इधर दसयन्ती बड़े उत्सुक्तिचत्त से राजा श्रुतुपर्थ और उनके सारिथ बाहुक के आने की प्रतीचा कर रही थी। इस बात पर उसे पूरा विश्वास था कि नल के सहरा असाधारण सारिथ के सिवा दूसरा कोई उतने थेड़े समय में अयोध्या से विदर्भ नहीं आ सकता। इस समय वह बार बार की सुनी रथ की वर्षराहट सुन कर समम गई कि इस रथ के चलाने वाले अवस्य ही नल होंगे। उसने कोठे की छत पर से बाहुक को देखा, किन्तु दूर के कारण और नल की सूरत-शकल बदल जाने के कारण वह झुछ निश्चय न कर सक्ती। तब उसने बाहुक की जाँच के लिए अपनी एक विश्वासपात्री दासी को उसके पास भेजा। बाहुक का उत्तर सुन कर दासी का सन्देह और भी दह हुआ। उसने दमयन्त्री के पास आकर बाहुक की असेक अलीकिक शक्ति की बात कही। बाहुक विना आग के जकड़ी जला

१८० पितन्नता ।
सकता है । वह अपनी दृष्टि के द्वारा खाली घड़े को पानी से भर
सकता है और भी ऐसी अनेक वातें उसने कहीं । किन्तु दमयन्वी
ने अलीकिक गुणों की अपेचा लौकिक गुणों से ही बाहुक को परीचा
लेना चाहा । उसने बाहुक के हाथ की बनाई तरकारी खाई और
उसमें वहीं स्वाद पाया जो नल की बनाई तरकारी में पानी थी ।
इसके बाद उसने अपने बेटे और बेटी को दासी के साथ बाहुक के

पास भेजा। बहुत दिनों के अनन्तर वेटे घेटी को देख कर बाहुक रूपी नल अपने की न सँभाल सका। वह उन्हें गोह में विठा कर बारंबार उनका मुँह चूमने और लाइप्यार करने लगा। उसकी धांक्षों में आंसू भर आये, सारा शरीर कण्टकित हो गया। पीछे दासी मन का माव लख न ले, इस भय से उसने लड़के लड़की को

गोद से उतार कर कहा—"मेरे भी ऐसे ही दो वालक हैं। इन्हें देख कर उनका समरण हो आया। इसीसे में अपने को न रोक सका। तुम इसके लिए मन में और कुछ बात न समम्को।"

हासी ने लीट कर दमयन्ती से सब वाते कहीं। दमयन्ती के मन में अब कुछ संदेह न रहा, तो भी उसने

बाहुस को एक बार ध्रपनी आंख से देखना उचित ससम उसे ग्रन्त:पुर में युक्ता मेजने के लिए माता से प्रार्थना की। रानी ने राजा भीम से सक्राह ने बाहुक को भीतर युक्ताया। चिर वियोग

के अनन्तर नह और इमयन्त्री की परस्पर मेट हुई। होनों के रहु-रूप में वहुत कुछ हेर फेर हो गया था। नह ने देखा, खयंवर की सभा में जिस इमयन्त्री ने विकशित कमहिली की भाँति अपनी शोभा और सुगन्य से हज़ारों व्यक्तियों के मन को अपनी श्रीर

स्रोंच लिया था, ब्राज वह सायङ्कालिक पश्चिनी की भाँति कुम्हि-लाई हुई सीरभहीन देख पढती है। वह गेरुम्रा कपढा पहने योगिन सी बनी है। सिर में कभी तेल श्रीर कंघीन देने से केश जटिल श्रीर भूरे हो गये हैं। गाल पीले पर्ब गये हैं। होठ सूखे हैं। शरीर में एक भी ऋलंकार नहीं है। उसी पुराने आये कपड़े से कमर से ऊपर को ब्रङ्ग को छिपाये हैं। वहीं साड़ी का आधा दुकड़ा उसके जीवन का आधार हो रहा है। पतिव्रता दमयन्ती की वह विषाद-भरी मृति देख कर नल का हृदय विदोश हुआ । दमयन्ती ने भी देखा, नल का वह गाम्मीर्य सुन्दर विलिष्ट शरीर राहुमल चन्द्रमा की भाँति प्रकाश-हीन और असन्त कुश दिखाई दे रहा है। उनके चेहरे पर कालापन छा गया है । सेवावृत्ति के श्रवलम्बन से उनके शरीर की अवस्था कुछ श्रीर ही सी हो गई है। नल की दशा देख कर दमयन्ती का हृदय काँप उठा । नल के खरूप में इतना श्रन्तर पढ़ गया था कि जिन्होंने नल को पहले देखा था वे उसे न पहचान सके । किन्तु परिव्रता स्त्री के पास क्या पति कभी छिपे रह सकते हैं ? ' इमयन्ती ने बाहुक में नल के सम्पूर्ण लच्चण देख उनके पैरां पर गिर पड़ी। फिर जो कुछ हुआ, वह कहना बाहुल्यमात्र है। गर्म श्रांसू के साथ गर्म श्रांसू का, दीर्घ निश्वास के साथ दीर्घ निश्वास. का, और उमगती हुई छाती के साथ उमगती छाती का मिलन हुआ। दोनों के चिर-सन्तप्त-हृदय ठण्डे हुए। नल जिस रात को इमयन्ती की साड़ी में से आधा फाड़ कर निकल भागे, उस समय से त्राज तक दोनों ने किस कष्ट से समय विताया. दोनों पर क्या क्या आपदायें आईं, वह परस्पर कहते ही कहते

सारी रात बीत गई। दोनों में किसी की एक बार भी धाँखः न लगी।

भार द्वांते ही यह शुभ संवाद चारों ओर फैल गया। विदर्भ के प्रजागब रानी और राजा को वेटी-जमाई के शोक में निमग्न देख कर किसी तरह का उत्सव न मनाते थे। सब उदास रहा करते थं। अब वे लोग यह शुभ संवाद पा बढ़े उत्साह से श्रानन्दोत्सव की तैयारी करने लगे।

राजा ऋतुपर्यो को जब मालूम हुआ कि उनका सार्यि वाहुक

ही नल हैं तब वे दमयन्ती से प्रति लालसा दिखलाने से कारण लाला से प्रियमाण हुए ! आ़ल्रिर उन्होंने नल की प्रार्थना के अनुसार उन्हों बूतिवशा सिखला दी, और उनसे रख हाँकने की शिचा पाकर प्रसन्न मन से अयोध्या को लीट गये। नल जुवे में जब से सर्वस्व हार कर पुष्कर के हारा अपमानित हुए ये तबसे उनका हृदय दिन रात शोक से जला करता था ! वे कुछ दिन उपरान्व दमयन्ती की विदर्भ में ही रख ससुर से आ़क्षा ले निषय को गये और पुष्कर को फिर जुवा खेलने के लिए जुला भेजा ! साथ ही इसके यह मी कहला मेजा कि जुवा खेलना मंजूर न ही तो लड़ने के लिए तैयार हो।

पुष्कर पहले ही से दमयन्त्री को चाहता था। पर यह मनीगतभाव प्रकाश करने का उसे पहले कभी साहस न होता था।
इस समय धनमद में मत्त होकर उसने वड़ी पृष्टता के साथ कहा--"आज मेरा चिरमनेारथ सफल हुआ। तुम्हारी समस्त धनसम्पत्तिः
मेरे हाथ में आ जाने से अब दमयन्ती आप ही यहाँ आकर मेरी

सेवा करेगी। इस लिए श्रव विलस्य करने की ज़रूरत क्या ? शीघ्र ही जुवा त्रारम्भ हो। मैं खेलने को तैयार हूँ।"

दोनों फिर ज़ुवा खेलने लगे। पुष्कर ने सोचा था, "पहले की तरह इस बार भी नल को सहज ही में जीत लूँगा।" 'पर यह न हुआ । पुष्कर प्रति बार हारने लगा । नल ने कमशः उसका राज्य धन श्रीर प्राण तक जुए में जीत 'लिये। तव उन्होंने पुष्कर'से कहा-"दुष्ट ! नराधम ! तुम मानूतल्य भीजाई पर वृरी इच्छा रखते थे। इस लिए प्राणवध ही तुम्हारा उचित दण्ड है। किन्त विधिवश इस समय तुम्हारी वह अवस्था हो गई कि दमयन्ती के पाने की लालसा ते। दूर की वात है, मैं चाहूँ ते। अब तुमसे उसकी सेवा कराऊँ । परन्तु तुम मेरे छोटे माई हो, कठिन अपराध करने पर भी तुम्हारा मुँह देख कर मेरे मन में दया उपज आती है। भ्रातस्तेह बड़ा प्रवल होता है, इस लिए मैंने तुमको छोड़ दिया। तुन्हें प्राग्रदण्ड देकर मैं अपने ऊपर भ्रात्वध का कलक लेना नहीं चाहता। तुम्हारी धन-सम्पत्ति भी मैंने तुमको लौटा दी। फिर कभी ऐसा खोटा काम न करना । जाओ, मैं असीस देता हैं. तम धर्मपथ पर आरुढ़ होकर दीर्घजीवी हो; ग्रीर सुख से समय बिताग्री।"

पुष्कर साई के प्रति छत्तक्षता प्रकाश करके अपने घर गया।
नल निदर्भ से दमयन्ती को अपनी राजधानी में ले आये।
होनों पुत्रवत प्रजापालन और धम्मीचरण से सुखपूर्वक समय विताने
लगे। सभी लोग दमयन्ती रानी और राजा नल की धर्मनिष्ठा पर
धन्य धन्य करने लगे। दमयन्ती जैसी गुयवती ओ, नल भी वैसे

ही गुणवान थे। सल्यरचा के लिए दमयन्ती के पास नल का देवदूत बनकर जाना और निष्कपट भाव से दूत का कार्य्य करना,
जलते हुए साँप को आग के बीच से बाहर निकाल कर उसकी
रचा के लिए अपने प्राण का मोह न करना, और पुष्कर के सदश
दुष्ट माई का अपराध चमा कर देना उनकी महानुभावता के ज्वलन्त
प्रमाण हैं। जब तक यह बसुन्धरा रहेगी वव तक उनका पितत्र
नाम प्रातःस्मरणीय रहेगा। वे जो "पुण्यलोक" की असाधारण
उपाधि से मूचित हुए, यह सर्वश्चा उनके योग्य ही हुआ। दमयन्ती
के साथ नल का मिलाप मिणकाश्वन के मेल के बराबर उपयुक्त
दुआ, इसमें सन्देह नहीं। "मिणकाश्वनसंयोग: कस्य न नयनोत्सवं
तत्ते।"

क्रठा श्राख्यान

शकुन्तला

मन की उमझ प्रकट कर रहे थे। ऐसे समय में हस्तिनापुर के महा-राज दुष्यन्त श्रपने श्रनुचर वर्ग के साथ शिकार खेलने के लिए वहाँ श्राये। जङ्गल स्त्रमाव से ही निस्तव्ध श्रीर गम्भीर होता है, इस समय त्राखेट के कोलाहल से उसकी निस्तव्यता भङ्ग हो गई। बड़े बड़े विशाल पेड़ लवाग्रेां से लिपटे हुए खड़े थे । उनके डाल-पात इतने घने थे कि उसके भीतर से सूर्य्य की किरण नीचे नहीं ग्राने पाती थी। इस कारण दिन में भी वहाँ अन्यकार का ही साम्राज्य रहता था। जङ्गल का कोई स्थान कटीले पैपेश से घिरा था, कहीं काँस ही काँस देख पड़ता था, कहीं पत्थर के बड़े बड़े दुकड़े पड़े थे। कहीं समतल भूमि, कहीं ऊँची नीची, कहीं छोटे छोटे सोतां में सूखे हुए पत्तों के सड़ने से जल विगड़ गया था। वे उसी विकृत जल की लिये धीरे धीरे वह रहे थे । कहीं भरने का पानी शब्द करता हुआ नीचे गिर रहा था। राजा दुष्यन्त के अनुचरवर्ग छोटे छोटे दल बाँध कर इस जङ्गल को चारों श्रीर से घेरे खड़े थे, कहीं बांसुरी, ढोल और मृदङ्ग भ्रादि भांति भांति भें वाजे वज रहे थे। वन से वादर होने का मार्ग ताँत के वनाये हुए जाल से थिरा था। हथियारवन्द सिपाही सितर्कभाव से वहाँ खड़े थे। जङ्गल के प्रत्येक स्थान का परिचय स्तेवाले चनरले भिद्ध किरात जङ्गल में शिकार खोजने की इच्छा से इथर उधर दैाड़ रहे थे। उनके वाँथे हाथ में सिंगा और दाहने हाथ में वर्छी थो। कमर में छुरी लटक रही थी। साथ में बड़े बड़े शिकारी कुत्ते थे। वे जङ्गली मतुष्य कमी सिंगा बजा कर परस्पर एक दूसरे की सङ्गत द्वारा कुछ कहते थे। कमी किसी कुँचे पेंड पर चढ़ कर श्रमने साथियों को पुकार कर कहते

पतिञ्चता ।

सूखी लकड़ी का ढेर आग लगने से घघक रहा था। कहीं डफ.

१⊏६

निकला है।" मार, तीतर श्रीर तीते आदि पत्ती हर कर एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर जड़ कर बैठते थे। उनके भयसूचक शब्दों से जङ्गला की शान्ति में ज्याधात पहुँच रहा था। राजा दुष्यन्त ने वन में प्रवेश करने थाग्य देा पहिचे की छोटी सी गाड़ी पर आरुड़ होकर इस घने जङ्गल के भीतर प्रवेश किया। सारिष्य के सिवा उनके साथ में श्रीर कोई न था। हिरन के पीछे पड़ कर वे खीर साथियों को

थे—"यह देखों, जङ्गली मैंसों का भुंड उस तरफ़ जा रहा है, यह हिरनेंा का यूथ सामने दिखाई दे रहा है, वह एकदन्वा हाथी इस ओर ख्रा रहा है. यह देखों, सामने की भाड़ी से एक सेस्टा वाघ

पीछे होड़ आये थे । एक वहुत सुन्दर हिरन उनके सामने वायु-वेग से भागा जा रहा था। राजा का रथ भी उसके पीछे पीछे जा रहा था। जङ्गल स्वभावतः पेड़ पौधों से भरा रहता है, धीर रास्ता भी अञ्छा नहीं, इस कारण सारिष बहुत ग्रायास करने पर भी रख को वहाँ तक नहीं ले जा सकता था जहाँ से राजा को हिरन पर वाग चलाने का सुभीता होता। हिरन के पीछे रथ कई कोस आगे निकल गया, धेवड़े के गुँह से भाग वह चला। राजा के सिर से भी पसीने चूने लगे, तो भी रथ हिरन के पास तक न जा सका। आहिर रथ जङ्गल को पार कर मैदान में आया। जङ्गल का दश्य पीछे पड़ा, सामने दूसरा ही दश्य आ पड़ा। किन्तु राजा और सारिथ की दृष्टि थी हिरन के ऊपर। और वस्तु देखने का उन्हें अवसर न था।

े सारिथ ने कहा— "महाराज ! मैं इतनी देर ऊँची नीची ज़मीन में इच्छानुसार रथ नहीं चला सकता था । अब मैदान में अगया. देखना है, सृग भाग कर कहाँ जाता है ?"

राजा—"देखा, मैं इस हिरन की अभी मारता हूँ।" साथ ही उन्होंने धनुष पर बाख चढ़ाया। िकन्तु बाख फेंकने के पूर्व ही दो तपस्ती एक पेड़ की आड़ से बाहर ही चिछा कर बोले— "महाराज! यह आश्रम का मृग है। इसे मत मारो।" यह सुन कर सारिश्व ने राजा से कहा—"महाराज, दो तपस्ती इस हिरन के मारने का निषेध कर रहे हैं।"

राजा-"'ता शीव घाड़े की बाग राकी।"

सारिश्व ने घोड़े की रोका। इसी समय शिष्यसिहत एक सुनिः राजा के सामने त्राकर दोनीं हाथ ऊपर उठाकर बीले—

महाराज ! यह आश्रम का ग्रग है, इसे न मारे । दीन दुखियों के रचार्थ ही ब्रापका अब है न कि निरपराधी के वधार्थ । राजा ने उन्हें प्रणाम करके कहा—''अब मैं इसे न भारूँगा।" यह कह कर बाख को प्रसंभा पर से उतार कर तर्कस में रख लिया। तपस्ती ने आशीर्वाद देकर कहा—"महाराज! आप जिस

चच वंश में उत्पन्न हुए हैं, यह कार्य उसके अनुकृत दी हुआ है।

पतिव्रता ।

.644

मैं आशीर्वाद करता हूँ, आपको आप ही के सदश गुणवान चक-वर्ती पुत्र हो।" राजा—"मैंने आपका आशीर्वाद माथे चढ़ाया।" तपसी—"महाराज! हम होम की लकड़ी लाने जाते हैं।

यहाँ से समीप ही कण्व ऋषि का आश्रम है, देखिए, वह दिखाई देता है। यदि आपके दूसरे कार्य में बाधा न पड़े तो आप वहाँ चलकर आज हम लोगों के श्रतिथि हों। तपोवन देखने से आप जान सकेंगे कि आपके प्रताप से केवल श्रामवासी ही नहीं तपीवन

-के निवासो लोग भी निर्विन्नतापूर्वक अपने धर्म का पालन कर रहे हैं।" राजा—"क्या महर्षि (कण्व) इस समय श्राश्रम में हैं।" तपस्वी—"नहीं। वे अपनी कन्या शकुन्तला के ऊपर अतिथि-

सत्कार का भार देकर आप शकुन्तला की किसी अनिष्ट दशा के शान्त्सर्थ सोमतीर्थ गये हैं।"

राजा—"अच्छा। मैं उनके धाश्रम में जाकर शकुन्तजा का दर्शन कहँगा। मैं उनके धाश्रम के समीप धाकर विना उनके धाश्रम का दर्शन किये कैसे जा सकता हूँ ? यह मेरी विनय

प्रार्थना है कि जब वे तीर्थ से आवें, तब उनसे कह दीजिएगा।" दोनों तपस्यी राजा को आशीर्वाद देकर चले गये। राजा ने सारिथ को रथ थांगे बढ़ाने की आज़ा दी। रथ च्यों च्यों आगे जाने लगा त्यों त्यें पहाड़ी भूमि की कुछ और ही शोभा दिखाई देने लगी। चारों श्रीर समतल भूमि, जिसमें कहीं कोटे श्रीर कडूड़ का नाम नहीं, कहीं कहीं जक्कली पेड़ों के साथ साथ फलफल के पेड़ दिखाई देते थे। कुछ दूर श्रीर आगे जाकर राजा ने देखा, "कहीं कटे हुए नये धान का बेक्स रक्खा है, कहीं गाय बछड़े चर रहे हैं। कहीं पेड़ के नीचे सुग्गे के गिराये पके फल पड़े हैं।"

ऋषिगाम स्नान करके जिस रास्ते से गये हैं, वह उनके बल्कल श्रीर जटा से गिरं हुए पानी से भीगा हुन्ना है। सगगण रथ के शब्द से डर कर इधर उधर भागते हैं और वार बार पीछे की ग्रेगर बूम कर आँखें फाड़ रथ की स्रोर देखते हैं। होम का पवित्र धुवाँ चारों त्रीर सुगन्ध फैला रहा है। दूर से मधुर सामगान सुन पड़ता है। किसी के न कहने पर भी राजा और सारिध दोने। समभा गये कि उन्होंने तपावन में प्रवेश किया। देखा, मालिनी नदी कल-कल शब्द से कानों में मधु बरसाती हुई वह रही है। उसके दोनेां किनारें। पर मुनिगर्शों की दर्शनिर्मित कुटियाँ शोभायमान हैं। नदी के तट में जो स्वासाविक सुन्दर उपवन है, वसन्त ऋतु के आगम. से उसकी अपूर्व शोभा चित्त को मोहित कर रही है। वसन्त की: हवा मालिनी के जल-स्पर्श से ठण्डी होकर बेले की सुगन्यि से सनी हुई घीरे घीरे वह रही है। उसके लगने से राजा का शरीर ठंडा हुआ। उनकी थकावट दूर हुई। उन्होंने सारिथ से कहा---''हम लोग तपोवन में आ गये। इस भेष से मुनि के आश्रम में. जाना उचित नहीं। तुम मेरे अस्त शख ले लो। घोड़े हिरन के पीछे बहुत दूर निकल ज्ञाने से हैरान हो गये हैं। इन्हें कुछ देर सुखाने दे। में तपोवन के दर्शन से अपने को पवित्र कर ज्ञाता हूँ।" यह कह कर राजा ने धतुप-वाख और शिकारी लिवास सारिष

के हाथ में दे भ्राप भ्रकेत्रे तपोवन में प्रविष्ट हुए । साथ ही

चनकी दिचय भुजा फड़क उठी। वे सीचने लगे—"शान्तिमय तपोवन में विवाहसूचक म्रङ्गस्त्रुक्त का कारय क्या ? फिर उनके मन में यह वात चाई कि भित्तत्व का द्वार सर्वत्र खुला रहता है।" वे मालिनी से किनारे किनारे जाने लगे। कुछ दूर जाने के बाद उन्हें रमयी का मधुर कण्ठस्तर सुन पड़ा। जैसे कोई कह रही हो, "सखी! इधर, इधर।" राजा ने कुत्तु लाकान्त होकर उत्त हो, "सखी! इधर, इधर।" राजा ने कुत्तु लाकान्त होकर उत्त हो, "सखी! इधर, इधर।" राजा ने कुत्तु लाकान्त होकर उत्त हो, "लखी हैं। वे केले का वकला पहने हैं। शरीर म्रलङ्कार-शून्य है, श्रृङ्गार का कोई चिह्न उनके प्रकृति से सारा तपीवन विकसित हो रहा है। उनके प्रत्येक ध्रङ्ग से मानी लावण्य टपक रहा है। हेखकर राजा सुष्य हुए। उन्होंने सन में सीचा,

जित हुई।"

राजा जो पेड़ की थ्रोट से उन ऋषिकन्याओं का दर्शन श्रीर उनके
परस्पर की वातचीत सुन रहे थे उसे वे ऋषि-अन्यों न जानवी

राजभवन में भी ऐसा मनेाहर रूप देखना दुर्लभ है। उद्यान की नवलता स्वाभाविक सीन्दर्श्य में ग्राज ग्रवश्य ही वनलता से परा-

र्थों। इसिलिए वे नि:सङ्कोचभाव से पेड़ों की सींच रही थीं और परस्पर हास्य-विनोद की बातें कर रही थीं। तीनीं ऋषिक्रमारियाँ श्रतुपम सुन्दरी थां। किन्तु उन तीनों में जो कम उन्न की थी वह उन दो सिखयों से भी सुन्दरता में वढ़ी थीं। नये यीवन के समा-गम से उसकी स्वामाविक शोभा तुरन्त के खिले हुए कमल की शोमा को भी लजा रही थो। राजा मुग्यनेत्र से उसके अङ्ग की अनु-पम शोभा देखने लगे। वे उसका जो अङ्ग देखते थे वहीं उनकी हिए अटक रहती थो। ऋषिकुमारियों की बातचीत और परस्पर के सन्वोधन से राजा समक्ष गये कि उनमें जो कम उन्न की है वहीं कण्व की कन्या शकुन्तला है। दूसरी दो उसकी सखी हैं। उन होनों में एक का नाम अनस्या श्रीर दूसरी का प्रियंवदा है।

ऋषिकुमारी जिस ढँग से परस्पर वाते कर रही थीं उससे राजा को विश्वास हुआ कि कठोर ब्रह्मचर्य्य से जीवन विताना इन सवों का उद्देश्य नहीं है। गृहस्थ-घर की उद्देश्य निक कों प्रवेश करने थोग्य ज्ञान जाम किया हैं। स्वभावतः जितेन्द्रिय और धर्मश्रील होने पर भी शकुन्तला को देख कर राजा के हृदय में दृढ़ अनुराग उत्पन्न हुआ। किन्तु चित्रिय होकर ऋषिकुमारी के प्रति प्रेमाभिलाघ उचित नहीं है इसलिए उन्होंने चित्त के वेग को रोकने की चेष्टा की। पर एकाएक उनके मन में यह भावना उत्पन्न हुई कि जब उस कुमारी को देख कर उनका विशुद्ध हृदय उस ओर आविष्टित हुआ है वब वह अवश्य चित्रय से विवाहिता होने का अधिकार रखती होगी।

सव ऋषिकुमारी बड़ी निर्मयता के साथ रहस्य की वाते' करती हुई पेड़ों में पानी सींच रही थीं । एकाएक उनके सन्मुख उपस्थित होते राजा की संकोच जान पड़ा । वे किस तरह उनके पास प्रकट हीं, यह सुयोग हूँ इंगे लगे। उसी समय एक भ्रमर, शकुन्तला जिस नविकसित लवा को सींच रही थी, उस पर से उड़ कर शकुन्तला के मुँह पर बैठने की चेंदा करने लगा। वह डर गई श्रीर श्रनेक उपाय करने पर भी वह उसे न मगा सकी। वह जिघर जाती थीं, श्रमर भी उसी तरफ़ जाता था भीर उसके होंठ के पास वारवार मेंड्राता था। वह वहां से भाग कर, बैठ कर, खड़ी होकर, श्रीर भांचल में मुँह छिपा कर, सब उपाय करके थक गई, पर भ्रमर उसका साथ न छोड़ता था। शकुन्तला पवरा गई, उसका मुँह सूख गया। धनस्या श्रीर प्रियंवदा खड़ी होकर चुपचा यह श्रपूर्व कीतुक देखने लगीं। श्रास्तिर शकुन्तला श्रभीर होकर

साथ नहीं छोड़ता। अब तुम इससे मुक्ते वचाओ ।"
अनस्या धीर प्रियंवदा ने हैंस कर कहा—"यह तुम हम से क्यों कहने लगीं। हम रचा करने वाली कीन ? वपावन-वासियों की रचा का भार स्वयं राजा के ऊपर है। धगर तुम पर कोई सङ्कट आ पड़ा है वो राजा दुष्यन्त का स्मरण करे। " दुष्यन्त ने देखा, यही अच्छा अवसर हैं। वे तुरन्त पेड़ की आड़ से वाहर हो ऋषि-कुमारियों के सामने उपस्थित हुए धीर वोले—"पुरवंग्रों के राजत्व-काल में किसका सामर्थ्य है कि सरलहृदया ऋषिकुमारियों पर किसी सरह का अत्याचार करें?"

वोली-"सरो ! मैं सब यह करके बक गई, यह दुष्ट भैारा मेरा

श्विपिकुमारी चैंकि उठों । दुष्यन्त का प्रभावशाली सुन्दर स्करूप देखने ग्रीर उनके एकाएक प्रकट होने से उन सवें के ग्राक्षर्य की सीमा न रही । वे उस अपरिचित व्यक्ति को स्तामने देख कर इक्का बक्का सी हो रहीं। पीछे उनमें श्रपेचा-कृत अनस्या बड़ी थी, वह आगे वह कर वोली—"आर्थ ! कोई ऐसी अनिष्ट घटना नहीं घटी है। हमारी यह सखी एक अमर के द्वारा सर्वाई जा रही थी। वह इसके मुँह पर बैठना चाहता था और यह भागी फिरती थी। हम दोनों अलग खड़ी हो कर वही हस्य देख रही थीं।"

इसके अनन्तर परस्पर कुशल-प्रश्न के बाद सब के सब एक पत्थर की चट्टान पर बैठ गये। उन सर्वो की कथावार्ता से राजा को मालूम होगया कि शकुन्तला ब्राह्मण की वेटी नहीं है, चत्रिय की वेटी है। राजर्षि विश्वामित्र उसके पिता हैं। मेनका नाम की श्रप्सरा उसकी माता है। महर्षि कण्व ने उसे पाला पोषा है। इसी से लोग जानते हैं कि वह कण्व की ही वेटी है। दुष्यन्त ने ऋषि-कन्याओं से अपना असली परिचय न दिया। उन्होंने अपने की एक राजसम्बन्धी बताया। किन्तु उनके रङ्ग रूप श्रीर वेालचाल से शकुन्तला श्रीर उनकी दोनों सखियाँ समभ गई कि यही महाराज दुष्यन्त हैं। शक्कन्तला के ऋनुपम रूपलावण्य से राजा पहले ही मोहित हो चुके थे। उस समय वहु विवाह की प्रया थी। ग्रनेक विवाह करने पर भी लोग समाज में दूषित नहीं सममे जाते थे। इस पर भी राजा के कोई पुत्र न या । इसिल्ड शकुन्तला को चित्रय की कन्या जान कर उसे पत्नी बनाने की उनकी प्रवल इच्छा हुई ! शक्कनतेला भी राजा की कमनीय मृति देख कर खिर न रह सकी। वह बचपन से ही सुनती थी कि योग्य वर मिल जाने से उसका व्याह कर देने में महर्षि को कोई श्रापत्ति न होगी।

वे यह नहीं चाहते घे कि शकुन्तक्षा जन्म भर कुमारी ही उनके व्यात्रम में रहे। रूप, गुग्ग, कुल, शील ग्रीर ऐश्वर्य में राजा दुष्यन्त से बढ़ कर योग्य वर कैंान मिलेगा ? इस लिए भोली-भाली शकुन्तता ने राजा को देखते ही मन ही मन उन्हें छपना हृदय दे दिया। वातों से मने।गतमाव प्रकट न करने पर भी उन दोनें। के मन की श्रवस्था सखियों से छिपीन रही। प्रेम की भाषान सुन पढ़ने पर भी हृदय में उसकी प्रतिष्विन पहुँच जावी है। इस लिए शकुन्तला थ्रीर दुष्यन्त दोनें ही दोनें के हृदय का भाव समभ गये । राजा व्यवहार-कुशल और गम्भीर थे, इस लिए उनके व्यवहार से कुछ विलक्त्रणता प्रकट न हुई। किन्तु शक्कन्तला सरलस्वभावा थी, वह ग्रपने मानसिक भाव के छिपाने में ग्रसमर्थ होकर सखियें। की **चपहास-पात्री बनी । राजा अनुसूचा और प्रियवंदा के साथ प्रेमालाप** कर रहे थे, इसी समय तपोवन में एक जङ्गली हायी के धाने की वात सुन कर सभी डर गईं और इच्छा न रहते भी श्रपने अपने श्राश्रम को चली गई'।

परस्परावलोकन से दुष्यन्त और शकुन्वला के हुत्य में जो प्रेमाग्नि प्रव्वलित हुई थो, वह विद्वंत होकर दिन दिन दन दोतों को दग्ध करने लगी। "राजा वर्णवन में आये हैं," सुन कर ऋषियों ने यक के रचार्य उन्हें कुछ दिन वहाँ रहने के हेतु अनुरोध किया। "चलो, शकुन्वला के दर्शन का तो सुविधा होगा।" यह सोष कर राजा ने उनके प्रसाव को सहर्ष सीकार किया। इससे दुष्यन्त और शकुन्वला दोनों को वीच वीच में परस्पर देखने का सुयोग मिलने और दोनों के चिच परस्पर दिन दिन प्रेमन्यूत्र में हढ़ रूप से

वद्ध होने लगे। शकुन्तला योग्य वर से व्याही जाय, यह श्रवसूया श्रीर शक्तन्तला की एकान्त वासना थी। इस लिए उनकी राजा थ्रीर शकुन्तलार्कमन का भाव देख कर निश्चय हुआ। कि इन दोनों का मिलन मिलकाञ्चन के संयोग सहश सब की नेत्र-सुखद होगा। महर्षि कण्व उस समय ग्राष्ट्रम में न थे। कब ग्रावेंगे, इसका भी कुछ निश्चय न था । इसलिए राजा ने उनके परोच में शक्रन्तला के साथ गान्धर्व-विवाह करने का संकल्प किया। गुरुजन की स्राज्ञा की कुछ स्रपेचा न रख प्राप्तवयस्क परस्पर स्रतुरक्त कन्या-वर के व्याह का नाम गान्धर्व-विवाह है। यह सर्वजनातुमेरित न होने पर भी उस समय के चित्रय-समाज में प्रचलित था। इसलिए राजा और शकुन्तला इन दोनों में किसी ने इस तरह के विवाह में कुछ संकोच न किया। शकुन्तला सब प्रकार अपने योग्य वर को श्रात्मसमर्पण कर रही है, यह सीच कर श्रतुसूया श्रीर प्रियंवदा ने इस विवाह में प्रसन्नता प्रकट की । उन दोनों सखियों की सहायता से दुष्यन्त शक्रुन्तला के साथ गान्धर्व-विवाह करके छतार्थ हुए।

कई दिन तपोवन में रह कर हुम्यन्त अपनी राजधानी को लौट गये। सहिंपे कण्व को विना जताये, उनके परोच में शकुन्तला को तपोवन से ले जाना उचित नहीं, यह सोच कर या किसी और ही कारण से; हुम्यन्त शकुन्तला को तपोवन में रख गये। पर यह प्रतिज्ञा कर गये कि शीघ ही उसे अपनी राजधानी में ले जायेंगे।

स्वामी के चले जाने पर पितप्रामा शक्कन्तला को पित के भिन्न ग्रीर कोई चिन्ता न रही। वह ग्राश्रम के सब कर्तव्यों को भूल कर दिन रात केवल दुम्बन्त की चिन्ता ही से समय विताने लगी। कण्य मुनि उसके ऊपर श्रविधिसत्कार का मार देकर गये थे। खामी की चिन्ता में निमग्न रहने के कारण शकुन्तज्ञा ने इस कार्य में मूल की।

एक दिन दुर्वासा मुनि श्रतिथिरूप में श्रात्रम में श्राकर उन्नस्वर से वेाले--''कोई है ? मैं अतिथि हूँ।" शकुन्तला दुष्यन्त की चिन्ता में ऐसी निमग्न थी कि उसने ऋषि दुर्वासा का पुकारना नहीं सुना । मुनिवर क्रोध से उसे शाप देकर वेाले--- "तू ने जिसकी चिन्ता में हूव कर मेरा अपमान किया है, जा, वह तुमी एकदम भूल जायगा ! जैसे पागल त्रादमी पूर्व का किया काम भूल जाता है, वैसे ही स्मरण करा देने पर भी तेरा प्रेमी तुभे न पहचानेगा।" शकुन्तला इस प्रकार वाह्यझान-शून्य थी कि दुर्वासा का कठार शाप भी उसके कान में न पड़ा ! किन्तु श्रनसूचा श्रीर प्रियंवदा यह शाप दूर से सून कर दै। इ कर श्राई' श्रीर उनके पैरों पर गिर कर शक्तु-न्तला का श्रपराथ चमा करने के लिए कोमलवासी से प्रार्थना करने लगीं। किन्दु क्रोधशील दुर्वासा किसी तरह चमा करने को राज़ी न हुए। परचात् उन दोनों ऋषिकुमारियों के ब्रनेक ब्रनुतय-विनय करने पर वोले—"कोई स्मारक चिद्व जब तक राजा न देखेगा तब वक शक्रन्तला का स्मरण उसे न होगा । स्मारक चिद्व देखते ही शकुन्तला की सब बातें उसे समरण हो श्रावेंगी।" यह सुन कर दोनों सखियों को धैर्य हुआ।

राजा विदा देग्ते समय शकुन्तका को अपनी नामाङ्कित अँगूठी दे गये थे। श्रनसुषा श्रीर प्रियंवदा ने सोचा, यदि राजा नहीं पह-'चानेंगे तो शकुन्तका वही श्रॅंगूठी उन्हें देखने को देगी। उससे राजा को तुरन्त उसका स्मरण हो श्रावेगा । इसलिए श्रव घवराने की कोई वात नहीं । शकुन्तला एक तो पित के निरह से व्याकुल है, "उस पर यह वृत्तान्त सुनने से उसे मर्मान्तिक कष्ट होगा। यह सोच कर उन्होंने इस विषय में शकुन्तला से कुछ न कहा।"

कुछ समय के अनन्तर महर्षि कण्व ने तीर्थ से आकर दुष्यन्त के साथ राकुन्तला के विवाह होने की वात सुनी । उनकी आझा की कुछ अपेचा न कर राकुन्तला ने जो सर्वथा योग्य वर को स्वोकार किया, इससे उन्हें कुछ खेद न होकर हर्ष ही हुआ। उन्होंने राजा के सहवास से राकुन्तला को गर्भवती देख कर उसे पित के घर मेज देना उचित समका। निश्चय हुआ कि महर्षि कण्व की वहन् गौतमी और उनके शाईवर तथा शारद्वत नामक दो शिष्य उसे साथ ले जाकर हिस्तानापुर राजा के पास पहुँचा आवेंगे। उन सर्वों के जाने का एक दिन नियत हुआ।

जो शक्कन्तला इतने दिन तपोवन का प्राथम्बरूप हो रही थी, जिसने अपने रूपलावण्य से इतने दिन तपोवन को विसृषित कर रक्ता था, वह अब सदा के लिए तपोवन से विदा होती है। अहा ! यह दरय कैसा करुयोत्पादक है ! कैसा मर्ममेदी है ! तपोवन के जितने स्थावर जङ्गम जीव थे, सभी शक्कन्तला के वियोगम्बर्स से कातर हुए । महर्षि स्थावतः धीर, गम्भीर धीर झानी थे, किन्तु शक्कन्तला की जुदाई का स्मर्थ करके वे भी अधीर हो उठे । ख़ुव तड़के स्नानादि किया समाप्त करके वे भक्कन्तला की विदा कर देने के हेतु उद्यत हुए । शक्कन्तला जाती है, यह देख उनकी आंखीं में आंधू भर आये । गला रुँघ गया । उन्होंने सीचा, में

इतना व्याकुल हो रहा है, तव न मालूम गृहस्य व्यक्तियों का हृदय कितना व्याकुल दोता दोगा।" वहाँ जितनी ऋपिपत्रियाँ यों शक़न्तला की बिदा करने के लिए सब उसके पास आई'। एक एक कर सब उसे छाती से लगाने छीर आशीर्वाद देने लगीं। किसी ने

प्रत्न चत्पन्न करो ।"

कहा—''बाग्रे।, तुम स्वामी की सदा सुहागिन हो।'' कोई वोली—"तुन्हारे वीर पुत्र उत्पन्न हो।" किसी ने कहा—"तुम पार्वती के समान पतित्रता हो।" इसी तरह सब श्राशीर्वाद देने लगीं । ग्रनस्या धीर प्रियंबदा ने फूलपत्तों के ग्राभूपक्ष से शकुन्तला को विभूपित किया। वह साचात् वनदेवी की भाँति शोभा पाने लगी । इन दोनों सखियों के मन का भाव बखाना नहीं जा सकता । वे दोनें। छाया की तरह इतने दिन शक्तुन्तला के साथ फिरा करती र्या। शकुन्तला के सुख से अपने को सुखी और उसके दुःख से अपने को दुखी मानती थीं। वही शक्कन्तला ग्रद सदा के लिए **उनसे विछुरती है। यही सोच कर उन दोनों की देह से मानो** जान निकल गई। जब उसके जाने का सब सामान ठीक हो गर्या तय शक्तुन्तला ने महर्पि को प्रखाम किया । महर्पि ने गदगद कण्ठ से कहा--''वेटी ! शर्म्भिष्ठा जैसी ययाति की प्रियतमा हुई, हुम भी वैसी ही पति की प्रियतमाहो, श्रीर पुरु के जैसा प्रतापी

सुन कर गैतिमी ने कहा-- ''शकुन्तला केवल इसे श्राशीवीद

महर्षि ने तपीवन के वृत्त और लताओं की पुकार कर कहा-

ही करके न समम्मे, यह उसके लिए वरदान हुआ।"

''हे ग्राश्रम के तक्ततागण ! जो शकुन्तला विना तुस सवें को पानी दिये खयं पानी न पीती थी, खभावतः अलङ्कार की अनुरा-गिणी होकर भी जो पश्चात् तुम्हें होश न हो इस भय से कभी तुम्हारे नवपल्लव न तोड़ सकती थी। तुम्हारे प्रथम फूल की कली निकलते देख जिसे पूर्ण प्रानन्द होता था. वह शक्तला आज अपने पित के घर जाती है। तुम सब इसे जाने की आज्ञा देा।"

गैतिमी ने शकुन्तला से कहा—''वेटी ! वनदेवतागण तुम्हारा कुशल मना रहे हैं। तुम उन्हें प्रणाम करे।"

शकुन्तला ने उन्हें प्रशास करके प्रियंवदा से कहा—''सखी ! महाराज को देखने के लिए मेरा चित्त ज्याकुल होने पर भी तपो-वन छोड़ कर जाने के लिए पैर नहीं उठता।"

प्रियंबदा-- "सखी ! वपावन छोड़ कर जाने में केवल तुम्हीं को छेश होता हो, यह नहीं। एक बार तपावन की ग्रीर भी देखी, पचिगमा भ्राज चारा नहीं चुगते, सभी चुपचाप पेड़ पर बैठे हैं। इरियों के मुँह से हरी घास गिरी जा रही है। वे मुँह ऊपर उठाये तुम्हारी श्रीर देख रहे हैं। मयूर ने नाचना छोड़ दिया है। लताओं के पुराने पत्ते क्या गिर रहे हैं मानी उनकी आँखों से श्रांसू टपक रहे हैं। तुम्हारी विरह-वेदना से श्राज सभी शोका-कुल हैं।"

शक्कन्तला एक लता की श्रोर देख कर बेली—"पिता! मैं एक बार अपनी प्यारी वहन माघवीलता से मिल आती हूँ।"

कण्व—''मिल ग्राग्रो। वेटी ! तुम्हारा जे। माधवीलता पर

बहन का सा अनुराग है वह मैं जानता हूँ।"

शकुन्तला लता के समीप जाकर बोली—"माधनी! यद्यपि तुम रसाल के साथ सुल से लिपट रही हो, वेा भी श्रपनी शाखा-रूपी वाँह से एक बार मेरा श्रालिङ्गन करो। मैं चिर दिन के लिए तुमसे श्रलग होती हूँ।"

कण्य—''वेटी ! मैंने तुम्हें योग्य वर के हाथ देने की वात पहले ही से सीच रक्खी थी ! दैवयोग से मेरा वह अभिलाप पूरा हुआ ! जैसे यह नई लविका आपसे आप रसाल को पा गई है, वैसे ही तुम भी अपने योग्य पित को पाकर कुतार्थ हुई। तुम दोनों के विवाहसम्बन्ध से मैं अब निश्चिन्त हुआ ! अनायास ही ईश्वर ने मेरा मनोरथ पूरा किया !"

राकुन्वला ने अनस्या श्रीर प्रियंवदा से कहा---"सखिया ! माघवी को तुम्हारे हाथ सींपे जाती हूँ ।"

कण्व—''अनसूया ! प्रिणंवदा ! रोग्रेग सत । तुन्हों जब रोग्रोगी तब राजन्तला को कैंगन समस्तावेगा ?''

एक असलप्रसवा हरियी पास में खड़ी थी। उसकी लच्च करके शकुन्तला ने महर्षि से कहा—"फिता! जब इस गर्भियी मृगी के वज्ञा हो तब यह शुभ संवाद मेरे पास कहला भेजिएगा।"

कण्य--"वेटी ! श्रवश्य ही कहला मेजूँगा ।"

इसी समय पीछे से किसी ने शकुन्तला का कपड़ा खींचा। वह बोली—''श्रय" ! कीन मेरा कपड़ा खींचता है ?"

कण्य--''जिसे तुमने दृष, चावल ग्रीर कोमल तृश खिला कर वड़ा किया, जिसके मुँह में कुश कांटे लगने से तुम अपने हाथ से उसे पेंछती और तेल लगाती घों, वही तुन्हारा पुत्र स्थानीय मृग-शावक तुन्हारे वस्न की सुँह से पकड़े खड़ा है।"

शक्रुन्तला ने मृगद्धीने को देख कर कहा—"तुम्हें माहहीन देख कर मैंने इतने दिन तुम्हारा पालन किया। अब पिताजी तुम्हारी रचा करेंगे।"

कण्य—''वेटी ! तुम्हारी श्रांखों में श्रांस् उमड़ श्राये । रोना वन्द कर सावधानी से चलो । नहीं तो इस ऊँची नीची भूमि में तुम्हारे पैर फिसल जायँगे ।"

सामान्यत: मनुष्य मनुष्य ही को प्यार करता है। किन्तु लवा को बहन और मृगशावक को पुत्र की वरह कौन प्यार करता है? हरिया व्याई या नहीं, व्याई तो उसके कौन बबा हुआ, यह जानने के लिए कितने लोगों का जी लगा रहता है? अपने को प्रकृति के साथ इस प्रकार मेलमिलाप रखने की शक्ति कितने मनुष्यों में पाई जाती है? शक्तनतला में यह शक्ति थी। जान पढ़ता है, इसीसे वह बनवासिती होकर भी महाराज दुष्यन्त की हृदयेश्वरी हुई।

वात पर वात छिड़ जाने से शकुन्सला के जाने में विलम्ब हो रहा था। यह देखकर मुनि के शिष्य शार्कुरत ने कहा—''गुरुदेव ! अब बहुत दूर जाने की आवश्यकता नहीं। आपको जो कुछ कहना हो, कहकर इस सरोवर के तट से अपने आश्रम को लैट जायें।"

कण्व—"तुम दुष्यन्त से कहना—"शकुन्तला ने किसी की श्रपेत्ता न करके उनके हाथ श्रपने को सौंप दिया। उन्होंने जैसे उद्यदंश में जन्म लिया है, इसके साथ वैसा ही अच्छा व्यवहार करेंगे। इसके प्रति उदासीनता दिखलाने से हम यद्यपि संयतात्मा हैं ते भी हमारा हृदय दुखी होगा, इसका वे स्मरण रक्खेंगे। शक्तु-न्तला के सम्बन्ध में उनसे हमारी यही प्रार्थना है। इसके बाद जे इसके भाग्य में लिखा द्वीगा वह द्वीगा ।" उसके सम्बन्ध में हमारा कुछ कहना नहीं है।

शाईरव से यह कह कर कण्य ने शक्तन्तला से कहा-"बेटी ! तुम से भी कई एक वार्ते कहनी हैं। उन्हें समरह रखना। तुम ससुरात जा रही हो। वहाँ जाकर गुरुजनी की सेवा करना. सीत के साथ प्रियसकी की तरह ज्यवहार करना। स्वामी कुछ अप्रिय न्यवहार भी करें ते। भी उनके साथ कभी प्रतिकल धाचरण नहीं करना। प्राधित जनें पर दया रखना। कभी सीभाग्य का गर्वन करना । जो श्रियाँ इस व्यवस्था के श्रनुसार चलतो हैं वही यथार्थ में गृष्टियी-पद-बाच्य हैं। जो इसके विरुद्ध खाचरख फरती हैं, वे वंश की रोग हैं। उनके द्वारा वंश की मर्योदा छप्त हो जाती है।"

यह कहकर फिर उन्होंने कहा---''श्रव में वहुत दूर न जाऊँगा। तुम अपनी संखियों से मिलकर प्रव यहां से प्रस्थान करो।" शक्र-न्तला रेते रेते पिता की प्रधास करके बोली--''क्या श्रनसूचा श्रीर प्रियंवदा भी यहाँ से लीट जायँगी ?"

कण्व—''हाँ वेटी ! ये दोनों भी व्याहने योग्य हुईं'। इसलिए तुम्हारे साथ इनका राजसभा में जाना उचित नहीं । गैतिमी तुम्हारे साध जायगी।"

शकुन्तज्ञा—''आश्री सखी ! तुम दोनों एक साथ गुभै गर्ज त्तमात्री।"

उन दोनों (अनसूया श्रीर प्रियंबदा) ने आँसू बरसाती हुई

शकुन्तला को गले से लगाया ग्रीर दूसरा कोई न सुने ऐसे धीमे खर में शकुन्तला से कहा—''सखी ! यदि किसी कारण से राजा तुमको न पहचान सकें तो तुम उन्हें उनकी नामाङ्कित ग्रॅंगूठी दिखलाना।"

राकुन्तला—"सखी ! तुमने ऐसी वात क्यों कही ? सुनकर भय से मेरा हृदय काँपता है ।"

सिखयों ने कहा—''ढरने की कोई बात नहीं। स्नेह की गित विचित्र है। दूसरे राजा की चित्तवृत्ति ! कीन जाने किस घड़ी कैसी रहे। इसिलए तुम से यह बात जता दी।"

शक्रुन्तला ने पिता से पूछा—"मैं इस तपोवन में फिर कव श्राऊँगी ?"

कण्य---''बेटी! योग्य पुत्र के हाथ में राज्य और कुटुम्बर्या का भार देकर जब तीसरेपन में खामी के साथ वानप्रस्थ आश्रम प्रहण करोगी तब फिर इस आश्रम में आश्रोगी।"

यों ही वातचीत करते दिन पहर से ऊपर थ्रा गया। शक्कन्तला एक एक कर फिर सब से मिली और आंसू भरी आंखों से गैतिमी के पीछे पीछे हित्ततापुर की ओर चली। कण्व मुनि भी अनसूचा और प्रियंवदा को साथ ले उदास मन से आश्रम को लैट आये। यातीवाले को थाती देकर जैसे लोग निश्चन्त होते हैं वैसे ही शक्कन्तला को पीत के बर भेज कर कण्व मुनि स्वस्थ हुए।

शक्तन्तला दुष्यन्त के दर्शन को चली है, किन्तु दुष्यन्त को क्या उसका स्मरण है ? वे तपोवन से विदा होकर जब राजधानी को ग्राये थे तव शक्तन्तला की चिन्ता उनके चित्त में छाई थी। परन्तु पहाड़ का शिखर गिरकर जैसे गिरिनिःसृत नदी की गित रोक देता है, दुर्वासा के शाप ने भी वैसे ही विशाल पापाय का आकार थारय कर शकुन्तला के सम्बन्ध में जो उनका अनुराग-स्रोत या, उसकी गाँउ को रोक दिया। दुण्यन्त शकुन्तला के सम्बन्ध की सब बाते भूल गये। शकुन्तला के प्रति पूर्वान्तरा की बात तो दूर रही, उन्हें शकुन्तला के देखने तक की सुधि न रही। इसी तरह कुछ दिन बीतने पर एक दिन वे राजकाज से झुट्टी पाकर आराम कर रहे थे। ऐसे समय में उन्होंने किसी को यह गीत गाते सुना—

"क्यों गये तुम भूल मुक्तको सो ज़रा हम से कहो। क्या यही है न्याय! जो मुक्तसे प्रलग होकर रहे। !!
पाप-पङ्कज की कली उस पर रहे तुम भूल कर।
है मुनासिव क्या यही! वैठे मले हो पूल कर !!
श्री रसाल की मध्तरी जब रसमरी सीरमसनी।
तव न होते थे जुदा करने लगे श्रव शठपनी !!
रानी इंसपदिका श्रपने मन से यह गीत गा रही थी। किन्तु
यह सुन कर राजा एकदम व्यथ हो उठे। उनके चित्त की गिंद विचित्र हो गई। उन्हें जान पड़ा, जैसे उनकी कोई श्रन्ठी चीज़
स्रो गई, जो श्रमूल्य रस्न उनके पास था, वह श्रव नहीं है। वहुत
सोचने पर भी वे कुछ न समभ सके। किन्तु एक विपादपूर्णभाव
उनके मन में उरशन हुआ।

राजा मन हो मन इस विषाद का कारण हुँ इरहे थे। इसी समय द्वारपाल ने ग्राकर इत्तिला दी—''महाराज! हिमा- लय पहाड़ के निकटवर्ती काश्यपसुनि के ग्राश्रम से कई एक मुनि मुनिपित्रियों के साथ श्रीमान् से मिलने की श्राये हैं। कारयप का नाम सुनते ही राजा ने बड़े ही उत्सुक हो उन्हें भीतर ले आने की आज्ञा दी और उनके खागत के लिए परेा-हित की संवाद भेज प्राप श्रमिहोत्रालय में गये। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि कारयप के आश्रम से आये हुए ऋषि श्रीर ऋषि-पत्नो थ्रीर कोई नहीं, वही महर्पि कण्च के शिष्य शार्करव स्रीर शारद्वत थे । उनके साथ गैतिमी और शकुन्तला थी । श्रनेक कठिन मार्ग का श्रतिक्रम कर वे हिस्तिनापुर द्याये थे। शक्कन्तला श्रपनी चिरसिंचत तपस्या के फलस्वरूप पित की देखने आई थी। नहीं कह सकते, उसके मन में भावीसुख़ के कितने चित्र श्रङ्कित थे। किन्तु विधाता की इच्छा की कीन जान सकता है ? राक्तन्तला की जिस वात का अनुमान कभी स्वप्त में भी न हुआ था वही हुआ।

शार्द्भरत श्रीर शारद्भत इसके पूर्व कभी शहर में न श्राये थे। इसिलए उन्होंने जो कुछ देखा, उससे उनके आश्चर्य की सीमा न रही। चारों श्रीर होगों की भीड़-भाड़ श्रीर कीलाहल । चारों श्रीर मीति भीति की विलाससामग्री! शान्तिमय तपोवन से इस मनुष्यकीलाहल-पूर्ण राजभवन में श्राकर उन्हें जान पड़ा जैसे वे ध्वकृते हुए श्रीम-कुण्ड में गिर पड़े हीं। उनका जी घवरा उठा। राजा ने सिंहासन से उत्तर कर विनयपूर्वक उन सर्वों का श्रातिश्यसत्कार किया। उनकी निष्कपट भक्ति देख कर वे सव वहे सन्तुष्ट हुए। शकुन्तला सब के पीछे लज्जा से सिर नीचा किये खड़ी थी। श्रू बट के भीतर से उसकी श्रमुपम सुन्दरता ने राजा की दृष्ट को आकर्षित

पूर्व जिस भाव का उदय हुन्रा या, इस समय विवाहिता शकुन्तला को देख कर उन्हें लेशमात्र भी उस भाव का उदय न हुआ। ऋषि-गयों के इस तरह उनके पास ग्राने का कारण क्या, वे केवल इसी

वात को सोचने लगे। उन्होंने उन सबों को श्रादर-पूर्वक विठा कर **उनको आने का कारण पूछा।**" शार्द्धस्व ने कहा---"महाराज ! महर्षि कण्व ने आपको श्राशीर्वाद देकर कहा है। श्राप जैसे गुखवान हैं, शक्रुन्तला भी

वैसी ही गुणवती है। रसाल के साथ माधवी के मिलन की भाँति श्राप दोनों का सम्मिलन भी श्रिभनन्दनीय है। इसलिए पहले उनसे अनुमति न लेने पर भी वे आप दोनों के गान्धर्व-विवाह से प्रसन्न हुए हैं। शक्कन्तला स्रापकी यथासमय सेवा कर गर्भियो हुई। श्रव श्राप इसको प्रहण कर सुलपूर्वक इसके साथ धर्माचरण करें।"

दुर्वासा के शाप से शक्तुन्तला के सम्बन्ध की कोई वात राजा को याद न थी। उन्होंने भ्राश्चर्यान्वित होकर पूछा:---''क्या कहा ! र्मेंने इस ऋपिकन्या के साथ व्याह किया है १º . जो कार्य समाज में भ्रप्रचलित है, धर्मविरुद्ध न होने पर भी, उसके करने से लोग पग पग में भय खाते हैं। उन्हें सदा डर कर चलना पड़ता है। इस लिए गान्धर्वविवाह की रीति से विवाहिता होने पर भी शकुन्तला शङ्कित-चित्त से राजा के पास श्राई थी।

पहले ही से उसकी छाती घड़क रही थी। इस समय राजा का उत्तर <u>स</u>ुनकर माने। उसके सिर पर वक्र गिरा । वह इतने दिन से जी सुख-स्वप्न देख रही थी, वह यथार्थ में स्वप्न ही हुन्ना। वह क्रब्र न नेल सकी। गौतमी ने समभा, शायद राजा ने शकुन्तला का मुँह नहीं देखा, इसीसे उसे नहीं पहचान सके। उसने शकुन्तला से कहा—''बची! जनाओ मत। यहाँ आओ, में तुम्हारे मुँह पर से पूँघट हटा देती हूँ। इससे राजा तुम्हें पहचान सकेंगे।"

. यह कह कर गैतिमी ने शकुन्तलाका घूँघट ऊपर की खठा दिया। मेघ का आवरण इटने से जैसे पूर्णचन्द्र की ज्योतना से सारा संसार प्रकाशमान होता है, वैसे ही शक्कन्तला के पवित्र सुख की ज्योति से समागृह उज्ज्ञल हुआ । सीन्दर्य देख कर किसका मन प्रसन्न नहीं होता ? किसका मन मुग्ध नहीं होता ? शकुन्तला के मुँह की अनुपम शोभा देख कर राजा ने मन में सोचा, ''संसार में इस मुँह की समता नहीं हो सकती। मानव जाति की वात जाने ें दो, चित्र में भी ऐसी सुन्दरता नहीं देखी जाती।" यह भुवनमी-हिनी सुन्दरता याचक रूप से उनके पास खड़ी है । महाराज दुष्यन्त अतुल प्रतापी, विश्वविदित, चक्रवर्ती, नृपचक्रवृद्धासिण थे । -यदि वे इस स्वतः सम्प्राप्त शोभाराशि शक्कन्तला को उपभोग के लिए रख लेते तो उन्हें कौन बुरा कहता ? किन्तु वे धर्मभीरु थे। अधर्म से उरते थे । उन्होंने कहा-"'मैंने कभी इनको देखा है, यह भी स्मर्ग नहीं होता, ब्याह करना तो दूर की बात है।"

मर्माहत गैतिमी, शार्क्स्प और शारद्वत ने राजा को अनेक प्रकार से समस्ताने की चेष्टा की। उन सबीं को सन्देह हुआ कि राजा ने शकुन्तला के रूप से मोहित होकर गुप्त रीति से उसके साथ गान्धर्व-विवाह किया था। अब लोकलजा से उसका शह्या करने में संक्रचित होते हैं। इसलिए वे सब राजा की इस अकर्तव्यता पर दे। एक कहु-वास्य कहने में न चूके। राजा ध्यपने को निर्दोषी जानते में, इसिलए ऋषिजनों के प्रति स्वामाविक भक्ति रहते भी उन्होंने उनकी बात का जवाब देने में कुछ संकोच न किया। जब वे लोग राजा की किसी तरह नहीं समका सके तब शारहत ने खिसिया कर शकुन्तला से कहा—"इम लोगों को इनसे जो कुछ कहना या, कहा, ध्रव तुन्हें कुछ कहना ही तो कही।"

शकुन्तला क्या कहती। वह विचारी कोमलहृदया, सांसारिक विपय से श्रनभिज्ञ वालिका इतने दिन वन के वृत्त श्रीर लताश्री तथा पशुपिचयों को प्यार करके और उनसे प्रेम का बदला पाकर शान्ति-पूर्वक सुख से समय विवाती थीं । प्रेम के भीवर भी जो इतना श्रविश्वास श्रीर सन्देद छिपा रहता है, प्रेम करके भी जो पीछे इस प्रकार श्रममानित होना पड़ता है, यह शक्कन्तला नहीं जानती थी। शकुन्तला क्या कहती ? किन्तु खभावतः लब्बाशीला होने पर भी उसके लिए वह लजा करने का समय न था। स्त्री का सर्वस्य धन सतील है । शकुन्तला के उसी सतीलसम्बन्ध में सन्देह श्रा पड़ा था। इसलिए श्रपनी मर्यादा के रक्तार्थ शक्तुन्तला की लज्जा त्याग कर दो चार वातें बोलनी ही पड़ीं। शकुन्तला ने पहले दुष्यन्त को "श्रावीप्त्र" कह कर पुकारा, परन्तु तुरन्त ही उसके सन में हुआ, जय विवाह में ही सन्देह है तब यह सम्बोधन क्यों ? उसने कहा-''पारन'' तपानन में नैसा अनुराग दिखलाने, श्रीर धर्म की साची करके विवाह करने के बाद अब इस तरह नज़र बदलता क्या **उचित है** ?"

राजां—"बरसात की नहीं किनारे को तेवड़ कर आप मिलन

होती है क्रीर तटस्थ वृत्त को भी गिराती है । देखता हूँ, वैसे ही तुम क्राप बदनाम होकर, क्रब सुभी भी बदनाम करना चाहती है। ।" हा ! कैसा कठोर ! कैसा हृदय-भेदी वाक्य है ! शक्त-वला . का कलोजा फट गया। तो भी वह धीरज घर के वेलि—"महा-राज ! यदि आपको यथार्थ ही विवाह में सन्देह हो तो मैं आप को कोई स्नारक चिद्व दिखलाती हूँ, तब तो आपको विश्वास होगा ?"

राजा—"श्रच्छा, क्या स्नारक है दिखाओ ।"

शक्रुन्तला ने वहीं उतावली से आँचल को खोल कर देखा। अनस्या और प्रियंवदा की वात सुनने के पीछे उसने राजा की दी हुई अँगूठी को वहें यन से आँचल में वाँच रक्खा था। वह क्या हुई ! वह वडी घवराहट के साथ गैतिसी का गुँह देखने लगी।

गैतिमी ने कहा—''वेटी ! च्राते समय मार्ग में तुमने शची-तीर्थ में स्नान किया था ! कदाचित् उसी समय वह पानी में गिर गई।''

गौतमी का सन्देह असम्भव नहीं है। यह शकुन्तला और उसके साथी दोनों ऋषिकुमारों ने जाना। किन्तु राजनीति के कै।टिल्य से परिचित राजा दुष्यन्त ने इसे केवल कपट-मात्र समभा। उन्होंने हँस कर कहा—''श्लीजाति जो स्वभावतः वात बनाने में कुशला होती है, उसका यह एक अच्छा उदाहरण है।"

मर्माहत शकुन्तला ने कहा—''महाराज ! मैं दैवदेष से स्मारक चिह्न न दिखा सकी । किन्तु मैं ऐसी बात कहती हूँ जो द्वानते ही ब्रापको पूर्व का द्वान्त स्मरण होगा।'' राजा---"क्या कहती हो ? मैं सुनने के लिए तैयार हूँ।"

शकुन्तला—''श्रापको याद होगा। एक दिन हम श्राप नव-मालिका-मण्डप में घैठे थे। श्रापके हाथ में पुरैन के पत्ते के दोने में पानी था। मेरा पालित एक हिरन का बचा मुक्ते देख वहाँ श्राया। श्रापने उसे पानी पीने का इशारा किया, परन्तु वह श्रापको श्रपरिचित जान कर श्रापके पास न गया। वही दोना लेकर जब मैंने उसे बुलाया वह तुरन्त मेरे पास श्राया श्रीर पानी पीने लगा। तब श्रापने च्यङ्ग करके कहा—''सब कोई श्रपनी ही जाति पर विश्वास करता है। तुम दोनों वनवासी हो। इसी से तुम

होनों की इतनी परस्पर सहानुभृति है।"

राजा—"ऐसे ही बनाबटी मीठी बातें से खियाँ पुरुप का सन
मोहित करती हैं।"

गैतिमी---''महाराज ! श्राप ऐसी वात न कहें । जो जन्म ही से तपोवन में पत्नी है, वह कपट-च्यवहार की शिचा कहाँ पावेगी ? कपट करना क्या कभी उसके जिए सम्भव है ?"

राजा—''तपिसनीजी ! नगर हो, या तपोवन, कपट-ध्यवहार कियों का स्ताभाविक धर्म हैं। वह किसी से सीसना नहीं पड़ता। कोयल को दूसरे पजी के घोसले में अपने वर्बों का पालन कराना कैतन सिस्सलाता है ?"

शकुन्ताला इतनी देर कालेंजे पर पत्थर रख दुष्यन्त की सब बातें सहे जाती थी। अब वह सह न सकी। एक तो विना अपराध के अप्रााह्य होना, उस पर यह मर्मेच्छेदी ज्यङ्ग बचन उसे सह न हुआ। सती की अपनी मर्यादा के आगे भय, मिक श्रीर लज्जा का भाव स्थिर न रख सकी। शक्कुन्वला ने रुष्ट होकर दुष्यन्व से कहा—''श्राप श्रपने ही हृदय जैसा सब को समभते हैं ?'' इससे श्रिपक वह श्रीर कुछ न वेल सकी। ग्लानि श्रीर रोप से उसका कप्ट रक गया। राजा ने उसका भाव देख कर मन में सीचा—''इसका क्रोध तो वनावटी नहीं जान पड़ता। किन्तु मैं अपने मन की प्रतीति कैसे न कहूँ ? मुभे तो कुछ भी समस्य नहीं होता।"

इस विषय में अधिक वादानुवाद करना निरर्थक जान शारद्वत ने दुष्यन्त से कहा—"महाराज! यह आपकी पत्नी है। पत्नी के ऊपर पति का सब अधिकार है। चाहे आप इसका लाग कीजिए, चाहे अपने पास रिवए, जो आपकी इच्छा हो कीजिए। हम सब जाते हैं।"

यह कह कर वे सब जाने की उद्यत हुए । यह देखं शकुन्तला भी रोते रोते उन सबीं के पीछे चली ।

डसको साथ आते देख गैतिमी ने शार्क्षरव से कहा—"यह देखें, शकुन्तला रोती रेति हम सबों के साथ आ रही है। उसका देख ही क्या है? स्वामी ने उसके साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार किया! वह किसके पास रहेगी?"

शार्ङ्गरव ने शकुन्तला को आते देख डाँट कर कहा—''क्या तुम स्वेच्छाचारिणी होना चाहती हो ?''

शक्रन्यला भय से काँपने लगी। उसकी यह दशा देख राजा ने ऋषिकुमार से कहा—''श्राप इन्हें क्यों <u>गुष्</u>रा प्रलोभन दे रहे हैं ? जब मैंने इनके साथ व्याह नहीं किया वब मेरे यहाँ इनका रहना उचित नहीं।"

राजपुरोहित वहीं थे। उन्होंने कहा—''महाराज! में आप से एक निवेदन करता हूँ। मृथिकन्या गर्भवती हैं। ज्योतिषयों ने कहा है कि आपके प्रथम पुत्र चकवर्ती होंगे। यदि इनके गर्भ से उत्पन्न वालक में चकवर्ती का लचल देल पढ़ेगा तो ये आपको विवादिता हैं, इस विपय में सन्देह न रहेगा। और यह न हो तो ये सर्वया आपके द्वारा परिशक होंगी। आपकी आज्ञा हो ते। प्रसर्वकहल तक ये मेरे घर में रहें।"

राजा—"अच्छी वात है। आप इन्हें अपने घर हो जाइए, मुक्ते इसमें कोई आपत्ति नहीं।" राजपुरोहित शकुन्तला को साथ हो अपने घर की थोर विदा हुए। इघर शार्क्सर और शारद्भत ने गीतमा को आगे करके तेपांवन को यात्रा की। कुछ ही देर में पुरोहित ने लीट कर राजा से कहा—"सहाराज! आक्षर्य! वड़ा ही थाअर्थ ! ऐसी अद्भुत घटना

कभी श्राज तक न देखी थी।" राजा—"क्या ! कैसी घटना ?"

पुरोद्वित—''मैं शकुन्तला को साम लिये घर ला रहा था। वह अपने भाग्य को बार बार धिकार देकर रो रही थी। अप्सरा-तीर्थ के पास होकर जाते समय अचानक एक ज्योतिर्मयो की उसे गोद में उठा कर आकाशमार्ग से ले गई। मेरी इतनी बड़ी उम्र हुई पर ऐसी घटना कमी न देखी।"

शकुन्तला के सस्वन्ध की सभी बातें राजा की आश्चर्य सें

मरी जान पड़ीं! उन्होंने कहा—''जो होते को थी हुई, अब उस बात को लेकर तर्कवितर्क करने को क्या आवश्यकता? आप अपने घर आइए।'' यह कह कर उन्होंने पुरोहित को विदा किया और आप अपने मन का विषाद दूर करने की इच्छा से विश्राममवन में गये।

यों दी दिन पर दिन बीतने खना। राजा ने राजकार्य में जलफ कर राजुन्तला के सम्बन्ध की सब बातों की मन से मुला दिया। एक दिन शहर के कीतवाल ने एक झँगूठी लाकर राजा की दिखलाई झीर उनसे कहा—''महाराज! एक धीवर जीहरी के पास यह झँगूठी नेचने की खाया था। वह कहता है, शची-तीर्थ में उसने एक रोहू मळ्ली पकड़ी थी। उसी के ऐट में यह झँगूठी उसे मिली। किन्छु इस झँगूठी में महाराज का नाम खुरा है, देख कर बीकीदार उसे चोरो की चीज़ जान कर धीवर की पकड़ लाया है। अब महाराज की जो झाड़ा हो।"

इँग्रही देखते ही दुष्यन्त के सिर से पैर तक मानो विजली दीए गई। एक साथ शकुन्तला के सम्बन्ध की सब वातें उन्हें स्मरण हो आईं। उनकी आंखों के आगे वह मालिनी-तीरवर्ती तपोवन, वह सिखवों के साथ शकुन्तला का फूलों के पेट में पानी सींचना, वह लवाकुच में शकुन्तला से मेट होना, वह प्रामू भरे नेत्रों से परस्पर एक दूसरे से विदा माँगना, वह प्रेमालिङ्गन-पूर्वक अँग्रही देना, श्रीर अन्त में उसे अपरिचित कह कर खीकार न करना आदि सब घटनायें एक साथ उनकी आंखों के सामने नाचने लगीं। वे अचेत हो पढ़े, पर तो भी अपने मन का भाव लिपाकर वेलि—"कोतवात ! यह अँगूठी मेरी है। देवयेग से जे चीज़ खो गई थी, मिल गई। धीवर निर्दोप है, उसे इनाम देकर बिदा कर दे। ।"

कीतवाल-- "जो प्राज्ञा । कह कर वाहर गया।" यही

धरती स्वर्ग है श्रीर यही नरक है। शकुन्तला को पाकर जिस राजा ने एक दिन अपने को स्वर्गसुख का अधिकारी समभा था, वही त्राज क्रॅगूठी पाने से अपने को नरक का श्रधिकारी समस्त रहे हैं । उनके मन में मर्मान्तिक-वेदना होने लगी। वे मन ही मन सीचने लगे, पत्नी का वियोग वहुतां को होता है, किन्तु कब किसने अपनी धर्मपत्नी की इस तरह त्याग दिया ? कहाँ वह हिमालय स्थित तपोवन, श्रीर कहाँ हस्तिनापुर ! गर्भवती पतित्रता इतनी दूर का कठिन मार्ग पैदल चल कर आश्रय के लिए मेरे पास आई, किन्तु आश्रय देना तो दूर रहा, मैंने एक मीठी वात से भी उसकी ख़ातिर न की, वल्कि मर्मभेदी व्यङ्ग वचन से उसके हृदय को वेधित कर उसे विदा कर दिया। इस अपराध का क्या प्रतीकार है ? शक्क-न्तला ने मेरे समभ्माने की कितनी ही चेटायें कीं, पर मेरी बुद्धि क्यों ऐसी भ्रष्ट हो गई जो मैं किसी तरह नहीं समक सका। मैं इतने दिन से राजकाज कर रहा हूँ, अभियुक्त जनें के गुग्र-देाष के जानने का अभ्यास रखता हुआ भी, मैं न जान सका कि शक्क-न्तला ग्रपराधिनी है या निरपराधा ? जो वैसी भोलीभाली, जिसका

वैसा स्नेह और कारुण्य-पूर्ण मुख्यमण्डल है, वह क्या कभी मिथ्या कह सकती हैं ? दूपरे जिन्होंने तपश्चर्या ही में अपनी सारी उम्र विताई, जो जन्म ही के साधु ग्रीर ब्रह्मिए हैं, उन सहर्षि कण्व ने अपनी कन्या को विवाहिता जान कर ही मेरे पास मेजा, क्या इस पर मैंने एक बार मी विचार न किया ? इस घोर पाप का प्रायक्षित नहीं हो सकता।

राजा ने मन में कहा:—''यदि श्रवः शकुन्तला को कहीं देख पाऊँ तो श्रयने श्राँद्धुश्रें से उसके चरण पखार कर् इस पाप का प्रायक्षित्त करूँ। पर वह है कहाँ ? क्या इस जन्म में फिर उसका दर्शन होगा ? प्रेरोहित ने कहा था, वह इस संसार से श्रन्तर्धान हो गई। शकुन्तला पतित्रता थी। इसी से वह स्वर्गलोक को गई। में पत्नी-द्रोही पापात्मा हूँ। इसी से नरक-यन्त्रणा भीगने के लिए मर्यलोक में रह गया।"

राजा यह सोचकर दुखी थे कि उनके पाप का प्रायिश्वत इस शरीर से होना कठिन है। पर यह बात न हुई। क्रॅंगूठी हाथ में श्राते ही उनका प्रायश्चित प्रारम्भ हुन्ना । शङ्कन्तला का स्परण उनके साथ विच्छू का काम करने लगा। शकुन्तला के वे प्रांसु भरे नयन उसकी वह संकोच भरी कोमल प्रार्थना, उसका वह ऋली-किक रूपमाधुर्य सोते जागते ब्राठों पहर उनके मन को मथित करने लगा। उसकी वह भोली सूरत उन्हें पत भर भी न विसरती थी। शक्तन्तला की चिन्ता ने दुष्यन्त के हृदय की खोखला कर दिया। वे जलहीन मीन की भाँति दिन रात छटपटाने लगे। नरकयन्त्रणा किसे कहते हैं ? इसी अवस्था को । अशान्ति रहित अवस्था में रहने ही का नाम नरक है। जिस पहाड़ के भीतर आग. जलती है डसका बाहरी हिस्सा कुछ दिन हरियालियों से हरा भरा सा देख पड़ता है, किन्तु उसके भीतर जो तीत्र ज्वाला से सदा दग्ध होता है,

वह कोई नहीं जातता। वह किसी को नहीं सुमता। दुष्यन्त की भी यही अवस्था थी। राजकार्थ में, सिन्ध-विम्रह में, निल्ध-कुल में जोता रेखते थे दुष्यन्त में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुम्मा है। किन्तु यदि कोई उनके हृदय का मध्य भाग देखता तो जानता। वहाँ कैसी तीन्नकाला दिन रात अधकती है। वही तो नरकाप्रि है। उसी के हृत्य तो मनुष्य के पाप का प्राथरिचत्त होता है। इस चिरकालिक प्राथरिचत्त से शकुन्तला के सम्बन्ध में दुष्यन्त के प्रेम का जो अंश सकाम था वह दम्य ही गया, किन्तु जो निष्काम था वह वच रहा। मूर्तिमती शकुन्तला के बदले आत्ममयी शकुन्तला ने उनके हृदय पर अधिकार किया। वे शकुन्तला के पुनर्वार दर्शन की आशा लागकर उसके गुग्रगान से, उसके चित्रतिम्मीय से और उसके मानसिक ध्यान से ही शान्तिलाभ की चेष्टा करने लगे।

इसी समय देवराज इन्ह्र ने दैकागों से सताये जाकर शत्रु की देवाने के लिए इन्हें स्वर्ग में बुलाया। ये युद्ध में जयलाभ करकी, इन्द्र से सम्मानित होकर, उनके रथ पर सवार हो मातिल के साथ प्रपनी राजधानी को लीटे आ रहे थे। रास्ते में उन्होंने एक अपूर्व शोभासम्पन्न सेाने के सहरा आकार का सुन्दर पहाड़ देखा। उस पहाड़ के सम्बन्ध में पूछने पर इन्द्र के सारिध ने कहा—'' इस पहाड़ का नाम हेमकूट है। देवताओं के पित कश्यप और अदिवि इसी पर्वत पर आश्रम बना कर तपस्या करते हैं।"

राजा ने कहा---''जब इस ब्राश्रम के ब्रतना समीप होकर जा रहे हैं तब उन दोनों के बिना दर्शन किये जाना कदापि उचित नहीं। चलिए, उन्हें प्रशास कर लें।'' मातलि—''ग्रन्छी बात है। चलिए।''

दोनों हेमकूट पहाड पर उतरे। मातिल कश्यप के पास राजा के त्राने की खबर देने गये। राजा तपावन देखने की इच्छा से इधर डधर घूमने लगे। कण्व के आश्रम में प्रवेश के समय जैसे एकवार **उनकी दहनी मुजा फड़क उठी थी, वैसे ही अब भी एकबार फड़क** ज्ठी। राजाने श्रपनी बाँह की धिकार देकर कहा-- ''क्यों बृशा फड़क रही है ? अपने सुख को आप ही छोड़ देने से टु:ख के सिवा ग्रीर क्या मिल सकता है ?" उन्हें कण्व का ग्राश्रम स्मरग हो श्राया । इस समय महर्षि करयप का ग्राश्रम देखकर वे श्रीर भी विमुग्ध हुए। क्या ही प्रशान्त श्रीर पवित्रभाव सर्वत्र छाया है। जिन पदार्थीं की कामना से साधारण तपखिगण ग्रन्य स्थान में तपस्या करते हैं, यहाँ वे पदार्थ पाकर भी ऋषिगण कठेार तपस्या में लगे थे। अभीष्टदायक कल्पवृत्त के वन में निवास करके भी वे निष्काम होकर केवल वायुसेवन से जीवननिर्वाह कर रहे थे। स्वर्ण-कमल के पराग से सुगन्धित जल में नहा कर, स्फटिंक-शिला पर वैठकर, श्रीर दिव्याङ्गनाओं के साथ रह कर भी वे महात्सा निर्वि-कार चित्त से तपस्या कर रहे थे। मातलि ने सत्य ही कहा था, जो लोग जैसे मनस्वी होते हैं. उनका ग्राशय भी वैसा ही ऊँचा होता है।"

राजा आश्रम देख रहे थे। ऐसे समय में उन्होंने किसी के। कहते सुना—"वचा! इतना चश्चल न होना।" राजा ने कुत्हरूल-वश उस और दृष्टि फेर कर देखा—"एक छोटा सा बालक एक सिंह के बच्चे को बलपूर्वक घसीटे लिये आ रहा है, और दो तप- रिवनी उसके हाथ से सिंहशावक को छुड़ाने की चेष्टा कर रही हैं। बालक जैसे देखने में सुन्दर है वैसे ही बलवान थ्रीर वेजस्वी भी है।"

उसका सोने सा गारा रङ्ग, वड़ी वड़ा- धाँखें, भाँरे से काले ष्ट्रॅंघराले वाल, पुष्ट शरीर देखकर राजा मोहित हो गये। उनकी इच्छा हुई, एकवार उसे गोद में उठा लें। किन्तु अपरिचित वालक के साथ ऐसा ज्यवहार करना उचित नहीं, यही सोचकर विरत हुए। उसी समय बालक ने सिंह के बच्चे का मुँह पकड़ कर कहा-"तू एकवार मुँह वा, मैं तेरे दाँत गितूँगा।" तपस्त्रिनियों ने देखा, लड़का सिंह के वच्चे पर भीरे भीरे ज्यादा वल प्रकाश कर रहा है। उन्होंने उसके हाथ से बच्चे को छुड़ा देने की बार बार चेष्टा की परन्तु वे किसी तरह कृतकार्य न हुईं! तब एक ने ट्सरी से कहा—"यह सहज ही न मानेगा। त्रात्रम से इसके लिए एक बिलीना ले छात्री । उसमें भूतकर यह त्राप ही इसे छोड़ देगा ।" यह सुनकर वह खिलीना लाने गई, इधर वालक सिंह के बच्चे की श्रीर भी श्रधिक सताने लगा। उसे देख कर एक तपिखनी जो उसके पास थी, बोली, "यहाँ कोई ऐसा नहीं है जो इस दुर्विनीत वालक के हाथ से सिंह के छैं।ने की छुड़ा दे।" राजा ने यह उचित अवसर समभ्त, आगे बढ़कर वालक के हाथ से सिंह के वच्चे को छुड़ा दिया। बालक के स्पर्श से बनका सम्पूर्ण शरीर थ्रानन्द से कण्टिकत हुग्रा। वे हृदय के श्रावेश की न रोक सके। भट उस लड़के को गोद में उठा लिया । उनका सर्वाङ्ग माने। ग्रमृत से संसिक्त हुआ। उन्होंने सोचा, "यदि दूसरे की सन्तान को गोह

में बिठानें से इतनी एप्ति होती है, तो न मालूम अपनी एन्तान को गोद में विठाने से कितनी एप्ति होती होती ? हाय ! यदि में अपनी प्रियतसा का खाग न करता, तो मैं मी ऐसी सन्तान पाकर छतार्थ होता।" वालक इतनी देर जैसी उदण्डत दिखा रहा था, राजा के पास वह न दिखा, स्थिर होकर उनके मुँह की ओर देखने लगा। राजा ने उससे कहा—'देखों अष्टिक्शमार ! यह उपह्रव करने का स्थान नहीं है। यह शान्त तपोवन है, यहाँ ऐसा उदण्ड न होना चाहिए।"

तपस्तिनी बोली—"महाशय ! यह ऋषिकुमार नहीं है, चत्रियकुमार है।

क्तत्रियकुमार सुनकर राजा को कुत्हल हुआ।

उन्होंने पूछा—"देवि ! क्या कहा ? यह चित्रयक्कमार है ? किस वंश में इसका जन्म हुआ है।"

तपस्विनी—"पुरुवंश में ।"

राजा चिकत होकर सोचने लगे, "तो क्या मेरी आशा एक-बार ही अमुलक नहीं है ? हो सकता है, पुबर्वशी कितने ही राजा युद्धापे में बानप्रस्य आश्रम धारय करते हैं। यह उन्हीं में किसी का अपल होगा । अच्छा ! और भी पूछता हूँ, "तपस्विनीजी ! यह आश्रम देवताओं के रहने का है, मनुष्य होकर यह बालक यहाँ कैसे आया ?"

तपस्विनी—"इसकी माता एक अप्सरा की कन्या है। उसी सम्बन्ध से उसने यहाँ आकर इसे प्रसव किया।"

राजा का हृदय ग्रीर भी ग्राशान्त्रित तुत्रा। उन्होंने पूछा, इसके

पिना का नाम क्या है ? तपस्तिनी मुँह फोर कर बोली---''डस पत्नी-त्यागकर्ना पातकी का कौन नाम से ?''

राजा—"सब वाते तो मेरे साथ घटती हैं। किन्सु क्या विधाता की इतनी दया होगी जो मेरी आशा फलवती होगी नहीं! मैं पापातमा हूँ इसी से इस स्गष्टिका में पढ़ कर सुग्ध हो रहा हूँ।" इसी समय दूसरी तपिवती ने आश्रम से एक मिट्टी का सुग्गा लाकर वालक से कहा—"सर्वदमन! देखेा, कैसा शकुन्त लाई हूँ, इस वाक्य में शकुन्तला शब्द उसके मुँह से, सुन कर बालक ने स्वप्न होकर कहा—"मेरी माँ कहाँ हैं।"

तपस्तिनी ने कहा—"इसकी माता का नाम शकुन्तला है, "शकुन्त लाई हूँ" वाक्य में माता का नाम उचारित सुन कर उसकी खोज कर रहा है।"

राजा ने मन में कहा--- "अब तुम आशा कर सकते हो। इतना सादृश्य विफल नहीं हो सकता। किन्तु यह बालक शकु-न्तला का है, माना, पर वह है कहां ? क्या मेरा ऐसा माग्य है

कि मैं फिर शकुन्तला के दर्शन से कुतार्थ होऊँगा।"

इसी समय पहली तपिक्तानी ने देखा कि सिंदशावक के साथ खेलते समय वालक की बाँह से यन्त्र (तवीज़) खुल कर गिर पड़ा है । उसने लड़के से पूछा—"सर्वदमन! तुम्हारा तवीज़ क्या हुआ ?"

राजा उसे समीप ही में पड़ा देख उठाने चले। यह देख तपिस्तती ने बड़ी घवराहट के साथ उन्हें पुकार कर कहा—"उसे मत खूओ, मत खूओ।" किन्तु उनके सना कर देने के पूर्व ही राजा ने उस तबीज़ को उठा खिया और अचस्पे के साथ तपीख़नी से पूळा—''आप तबीज़ उठाने से सुक्ते क्वों राजती थीं शुंग

उन्होंने कहा--''केवल साता ही पिता इस यन्त्र के झूने के प्रथिकारी हैं। दूसरा कोई इसे झू खे तो यह उसे सर्प बन कर इस लेता है।"

राजा--- 'आपने कभी इस तरह की घटना होते अपनी आँख से देखीं है ?"

तपस्विनी—''एकबार नहीं, कई बार।'' यह सुनकर राजा ने 'दीर्च निश्वास खिया।''

राजा का भावभङ्गी और उनकी आश्रित से सर्वेदमन की आश्रीत मिछती हुई देखकर ऋषिपक्षी पहले ही से नाना प्रकार की करपना कर रही थीं। इस समय उन्हें वर्षीज़ उठाते देख कर वक्ती आरचर्य की सीमा न रही । ये शङ्कन्तवा से यह वृत्तान्त कहने के लिए आश्रम की श्रीर तैहाँ। सर्वेदमन राजा की गोद में या। श्रीयप्रितेयों के चत्रे जाने पर उसने राजा से कहा—"भुभे छोड दो, मैं माँ के पास जाउँना।"

राजा---''बेटे, मेरे साथ चलो ।"

्वालक—''मैं दुष्यन्त का बेटा हूँ । तुम्हारा नहीं ।

सुन कर राजा को हैंसी आई। इस हुःख में भी उन्हें सुख का अनुभव हथा।

इसी समय तपिसनी के ग्रुँह से सब वृत्तान्त सुन कर शङ्घ-न्तला वहाँ ब्राई। शङ्गन्तला जब दुष्यन्त से तिरस्कृत हुई वी तब

उसकी माँ भेनका उसे अलचित रूप से यहाँ ले आई थीं! त वह यहाँ रह कर कठिन वपस्या से समय विवाने लगी। राज दूर से शकुन्तला को देखा । क्या यह वही शकुन्तला है जो 🐈 दिन प्रात:कालीन खिली हुई कमिलनी की भाँति कण्व के ब्राश्रम-रूपी सरोवर को सुशोजित कर रही थी ? जिसके मुखकमल के सीरम से श्राकृष्ट होकर भ्रमर फूले हुए लतापुष्प की छोड़ कर उसके ६ मुँह पर बैठने के लिए लालायित है। रहा था ? जिसके यौवन की शोसा देख कर वसन्त ऋतु की फूली हुई फुलवाड़ी संकुचित होती. थी ? दुष्ट्यन्त ने जिसके दर्शन कर अपने विशेष पुण्य का छः सममा था १ क्या यह वही शकुन्तला है ? शकुन्तला का चेट उदास है, उसके होंठ सूखे हैं, कपोल पीले हो गये हैं, आँख भी को धँस गई हैं। सिर के बाल रुख़े हैं, जिन्हें समेट कर वह जटा की माँति बाँधे हुए हैं । गेरुआ वसन पहने हैं । पति को विन्त से शरीर सूख कर काँटा हो गया है। किन्तु तपश्चर्या से छन उसके शरीर की कान्ति उज्ज्वल है । दुष्यन्त उस समय रूपयी युक्त उपमोग को योग्य शकुन्तला को नहीं खोजते थे, वे तप:ची कलेवरा शकुन्तला की खोज कर रहे थे। इसलिए वे प्रथम दर्श दिन की तरह अंगुप्त नयन से शकुन्तला की देखने लगे। दुष्य के स्वरूप में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। दिन रात है करते करते उनकी कान्ति मलिन और शरीर खिन्न हो गया था। दोनों ही परस्पर एक दूसरे की देख कर व्यथित थ्रीर विस्मित हुए उन दोनों के मन का भाव उस समय कैसा था, यह कीन बर सकता है ? दुष्यन्त ने शकुन्तला की ओर देखा, वह अब भी वहीं

